GWCL

SHEHRI MAHILA KAMGAR UNION

COUNTERING BACKLASH RECLAIMING GENDER JUSTICE

institute of development studies

अधिकारों का प्रत्यावर्तन:

भारत में घरेलू कामगारों के प्रतिरोध की कहानियाँ

क्रॉस-कंट्री कम्पैरटिव ऐक्शन रिसर्च ऐक्शन के पार्ट्नर के रूप में, **'प्रतिघात का प्रतिकार : घरेलू कामगारों के जेंडर-न्याय का पुन: दावा'** पर इन्स्टिटूट ऑफ़ डेवलपमेंट स्टडीज़ (आईडीएस), यूके के नेतृत्व में, जेंडर एट वर्क कन्सल्टिंग – इंडिया (जीडब्ल्यूसीएल) शहरी महिला कामगार यूनियन (एस.एम.के.यू) के साथ मिलकर काम कर रहा है, जो भारत में घरेलू कामगारों द्वारा सामना किए जाने वाले प्रतिघात से उनके ज़ारी संघर्ष को सामने लाने एवं अनुसंधान, क्षमता-निर्माण और प्रसार के माध्यम से ज्ञानवर्धन और रणनीतियों की पहचान करने में मदद करेगा।

'अधिकारों के प्रत्यावर्तन : भारत में घरेलू कामगारों के प्रतिरोध की कहानियाँ' नामक यह स्टोरीबुक महामारी और लंबे समय से लॉकडाउन की वजह से घरेलू कामगारों के जीवन और आजीविका को लेकर बढ़ी असुरक्षा पर प्रकाश डालती है। कहानियों का लेखन एस.एम.के.यू के सहयोग से चैताली हल्दर, संपादन स्वाती सिंह और डिज़ाइन व चित्रण मृणालिनी गोदारा द्वारा किया गया है।

हम घरेलू कामगारों के आभारी है जिन्होंने सहृदय हमें अपनी ज़िंदगी में आने का मौक़ा दिया।

© प्रकाशन – जेंडर एट वर्क कन्सल्टिंग – इंडिया 2023

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी भाग का पुनरुत्पादन, प्रतिलिपि, प्रसारण या अनुवाद केवल निम्न शर्त के तहत ही किया जा सकते है : प्रकाशक की पूर्व अनुमति द्वारा।

यह प्रकाशन कॉपीराइट है, लेकिन शिक्षण या ग़ैर-लाभकारी उद्देश्यों के लिए बिना किसी शुल्क के किसी भी विधि द्वारा पुन: प्रस्तुत किया जा सकता है लेकिन इसका पुनविक्रय नहीं किया जा सकता है। ऐसे सभी उपयोगों के लिए औपचारिक अनुमति ज़रूरी है, लेकिन सामान्यतौर पर अनुमति तुरंत दी जाएगी। किसी अन्य परिस्थिति में प्रतिलिपि बनाने या अन्य प्रकाशनों में पुन: इस्तेमाल करने, अनुवाद या अनुकूलन के लिए प्रकाशक से पूर्व लिखित अनुमति प्राप्त करनी होगी।

उद्धरण सुझाव: जेंडर एट वर्क कंसल्टिंग इंडिया (2023). । घरेलू कामगारों के अधिकारों के प्रत्यावर्तन: दिल्ली में प्रतिक्रियाओं व प्रतिरोधों की कहानियाँ, काउंटरिंग बैकलैश ब्राइटन : इन्स्टिटूट ऑफ़ डिवेलपमेंट स्टडीज़, DOI: 10.19088/BACKLASH.2023.005

प्रोजेक्ट के विवरण के लिए देखें - counteringbacklash.org, और ट्विटर पर @counterbacklash को फ़ॉलो करें

प्रकाशन की तिथि : जुलाई 2023

अधिकारों का प्रत्यावर्तन:

भारत में घरेलू कामगारों के प्रतिरोध की कहानियाँ

प्राक्कथन

अंतरर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ संधि 2011) ने 'महिला कामगारों ' को एक व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया है जो दूसरों के घरों में घरेलू काम करते हैं या जिनके साथ एक रोज़गार का संबंध होता है। आईएलओ के अनुमानों के अनुसार, कुल घरेलू कामगारों में से 83 फ़ीसद महिलाएं हैं जो दूसरों के घरों में अलग-अलग काम करते हैं, जैसे - बर्तन और कपड़े धोना, खाना बनाना, सफाई करना और बच्चों, बुजुर्गों और मरीजों की देखभाल करना इत्यादि। घरेलू कामगार मध्यमवर्गीय व उच्चवर्गीय परिवारों में पार्ट-टाइम, पूरे समय के लिए (12 घंटे के लिए मालिक के घर में काम करने) और निवासी कामगार (जो मालिक के साथ रहते है) के रूप में काम करते है।

घरेलू कामगारों का जनसांख्यिकीय विश्लेषण दिखाता है कि वे गरीब सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से संबंधित होते हैं और मुख्य रूप से शहरों में प्रवासी होते हैं। आमतौर पर महिला घरेलू कामगार अपने परिवार में एकमात्र कमाने वाले होते हैं या परिवार की आमदनी में मदद करते है। मालिक अक्सर महिला घरेलू कामगारों को आपसी सहमति से उनके काम का भुगतान करते है जो अधिकतर न्यूनतम मज़दूरी से भी कम होता है। इनमें से अधिकतर घरेलू कामगारों को कई घरों में काम करने के बाद भी न्यूनतम मज़दूरी नहीं मिल पाती है। जबकि वे इसके लिए दस-बारह घंटे लगातार बिना थके काम करते है। इसके साथ ही, चूँकि निजी घरों को सरकारी काम की जगह या संस्थान के रूप में मान्यता नहीं दी जाती है इसलिए इन काम की जगहों में श्रम क़ानून भी लागू नहीं हो पाता है। महिला घरेलू कामगारों के काम की जगहों पर राज्य नियंत्रण की अनुपस्थिति ने इसे शोषण और असुरक्षित काम की जगह बना दिया है।

मध्यमवर्गीय व अमीर घरों में घरेलू कामगार की भूमिका बेहद ज़रूरी है लेकिन इसके बावजूद वे अनिश्चित व असुरक्षित हालातों में काम करते है। बिना किसी पूर्व सूचना के वे कभी भी अपनी नौकरी खो सकते है। हाल ही में आयी महामारी के

दौर में उनके संघर्षों को बढ़ाकर उन्हें ग़रीबी और हाशिए पर बसने को मजबूर कर दिया है। दुनिया में कोविड -19 की महामारी को अब तीन साल हो चुके है। आज भी समाज इस महामारी के प्रभावों से उबरने की कोशिश कर रहा है। इनमें समाज के एक तबके के लिए उबरने का मतलब अपनी दिनचर्या, काम और सामाजिक जीवन में वापस लौटने से है, लेकिन घरेलू कामगारों के लिए इसका मतलब शून्य से अपने जीवन की शुरुआत करना है। महामारी के दौरान रातोंरात घरेलू कामगार ने अपनी नौकरियाँ खो दी। लॉकडाउन के दौरान, घरेलू कामगारों को बिना मालिक व राज्य के सहयोग के बग़ैर छोड़ दिया गया। उनमें से कई को काम के अभाव में अपने मूल निवास वापस लौटना पड़ा। क्योंकि उन्हें अपने मालिकों और राज्य ने न्यूनतम या नगण्य समर्थन के साथ छोड़ दिया गया था। काम के अभाव और शहर में मुश्किल से जीवन गुज़ारने के संघर्ष की वजह से कई को अपने मूल निवास स्थान वापस लौटना पड़ा।

इस स्टोरीबुक में दिल्ली के दो क्षेत्रों की बारह घरेलू महिला कामगार की कहानियों को शामिल किया गया है – गौतमपुरी – मथुरा रोड पर बदरपुर में स्थापित एक पुनर्वास कॉलोनी और फ़रीदाबाद – दिल्ली के बाहरी इलाक़े की एक अनौपचारिक बस्ती। गौतमपुरी की स्थापना साल 1999 और साल 2000 के बीच की गयी, जब अलग-अलग जगहों से झुग्गियों में रहने वाले लोगों को स्थानांतरित किया जा रहा था। ये जगह अधिकतर उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और तमिलनाडु के अनौपचारिक व असंगठित कामगार जैसे सड़कों पर दुकान लगाने वाले व भवन-निर्माण कार्य करने वाले लोगों का घर है। दक्षिणी दिल्ली की इस कॉलोनी में पीने के पानी और स्वच्छ्ता जैसी बुनियादी सुविधाओं का भी अभाव है।

वहीं स्टोरीबुक में शामिल कहानियों की दूसरी जगह मेन रोड से कई किलोमीटर दूर फ़रीदाबाद में रहने वाली घरेलू महिला कामगार की है। हाशिए पर बसी इस जगह की स्थिति का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि अभी तक मुख्य शहर से जुड़ने के लिए इसमें सुलभ सड़क निर्माण का अभाव है। ये बस्ती झारखंड और छत्तीसगढ़ के प्रवासी लोगों की बस्ती है। यहाँ रहने वाले घरेलू कामगार फ़रीदाबाद में पास की मध्यमवर्गीय परिवारों में दिनभर रहकर काम करने वाले श्रमिकों के रूप में काम करते है।

शहरी महिला कामगार यूनियन (एस.एम.के.यू) साल 2005 से इन कालोनियों में घरेलू कामगारों को

एकजुट करने की दिशा में काम कर रही है। अपने काम और सुरक्षा से जुड़े अधिकारों के प्रति जागरुक करने की दिशा में लगातार यह संगठन घरेलू महिला कामगारों के साथ काम कर रहा है। संगठन दिनभर घरों में रहकर काम करने वाले श्रमिकों के साथ मिलकर भी काम करता है, जिसके माध्यम से कई बार संगठन ने कामगारों को शारीरिक एवं यौन शोषण वाली काम करने की जगहों से कामगारों को बचाने में मदद की है। परिस्थितियों के आधार पर एस.एम.के.यू मालिकों के साथ बातचीत करता है और कभी-कभी घरेलू कामगारों के अधिकारों और लाभों के लिए क़ानूनी मदद भी करता है। साथ ही, एस.एम.के.यू घरेलू कामगारों के परिवारों और बच्चों के साथ उन्हें शिक्षा और आजीविका हासिल करने में भी मदद करता है।

इस स्टोरीबुक का उद्देश्य घरेलू कामगारों की रोज़मर्रा के संघर्षो भरी अनकही कहानियों को उजागर करना है। बीते सालों में किस तरह घरेलू कामगार हाशिएबद्ध और असुरक्षित बनाए गए है, ये बारह कहानियाँ इस संघर्ष को दर्शाती है। इन कहानियों के ज़रिए हम घरेलू कामगारों के अधिकारों और सामाजिक सुरक्षा के लिए सामूहिक तौर पर एकजुट होकर क़ानून और नियमों की माँग को मज़बूत करने की उम्मीद करते है।

अनीता कपूर
शहरी महिला कामगार यूनियन
जुलाई 2023

लेख-सामग्री संबंधित चेतावनी:

कुछ पाठकों को इस किताब में शामिल कुछ कहानियाँ परेशान करने वाली लग सकती हैं। इन कहानियों में शारीरिक और मानसिक शोषण, नशे की लत, भेदभाव, इस्लामोफोबिया, ज़बरन विस्थापन, आत्महत्या और आर्थिक संकट के मुद्दे शामिल है।

विषय-सूची

परिचय 02
रानी की कहानी 14
राबिया की कहानी 18
रूपाली की कहानी 22
सुंदरी की कहानी 28
पुष्पा की कहानी 32
साहिबा की कहानी 36
अनीता की कहानी 40
शकुंतला की कहानी 44
लक्ष्मी की कहानी 48
नूर की कहानी 52
संगीता की कहानी 56
प्रमिला की कहानी 60

कामकाजी लोग : भेदभाव और हिंसा में ज़िंदगी गुज़ारते हैं
व्यवस्थित गैर-बराबरी में बसा जीवन
जीवनचक्र के आघात ज़िंदगी और काम को प्रभावित करते हैं
महामारी की प्रतिक्रियाओं ने शहर की अनिश्चितताओं को बदतर बना दिया है
एस.एम.के.यू (आरई) द्वारा : घरेलू कामगार अधिकारों की माँग
पलायन, विस्थापन और क़र्ज़

परिचय

भारत का वेतनभोगी घरेलू कामगार कार्यक्षेत्र मौजूदा समय में उतार-चढ़ाव के दौर से गुजर रहा है, जिससे घरेलू कामगारों के अधिकारों पर दुष्प्रभाव पड़ रहा है।[1] आर्थिक अनिश्चितता, काम और आमदनी का संकट हमेशा से घरेलू कामगारों के जीवन की कड़वी सच्चाई रही है। लेकिन कोविड-19 महामारी और लॉकडाउन की शुरुआत के तीन साल बाद, इसके विनाशकारी प्रभाव घरेलू कामगारों के अधिकारों के विरुद्ध स्पष्ट प्रतिघात के रूप में दिखाई दे रहे है। अनिश्चित परिस्थितियों में रहने को मजबूर महिला घरेलू कामगार महामारी व लॉकडाउन के दुष्प्रभावों का ख़ामियाज़ा आज भी भुगत रही है। (दीवान 2022)

इस प्रतिघात की तीव्रता और तीक्ष्णता का एक कारण भारत में घरेलू कामगारों के भुगतान में की गयी व्यवस्थागत असमानताएँ हैं। हालाँकि यह क्षेत्र शहरी क्षेत्रों में महिलाओं के काम के सबसे बड़े क्षेत्रों में से एक है, (रवींद्रन और वानेक 2020) लेकिन भुगतान के संदर्भ में घरेलू काम को व्यवस्थित रूप से राज्य, समाज और मालिकों द्वारा नज़रअंदाज़ कर इसे कम महत्व दिया गया है। इसके पीछे की जड़ें काफ़ी गहरी हैं, जिसमें घरेलू काम को लेकर पितृसत्तात्मक जेंडर आधारित दृष्टिकोण है, जो महिलाओं के लिए बतायी गयी उनकी प्राकृतिक भूमिका (घरेलू काम) का महज़ विस्तार और इसका पारिवारिक जगहों पर प्रदर्शन है। (सेनगुप्ता और सेन 2013; नीथा 2013) साथ ही, घरेलू काम मुख्य रूप से हाशिएबद्ध समुदाय की महिलाओं द्वारा किया जाता है। दलित, आदिवासी और प्राथमिक शिक्षा से पूरी तरह दूर महिलाएँ वृहत स्तर पर इस प्रवासी कार्यबल को बनाती है। (नीथा 2013)

यही वजह है कि अनौपचारिकता और

1 यह परिचय लेखकों द्वारा आगामी पेपर (आगामी चिगतेरी और कुंडू) के साथ-साथ घरेलू कामगारों के अधिकारों पर एक नीति मानचित्र पर आधारित है, जो लेखकों के पास फ़ाइल में है।

अनिश्चितता घरेलू काम की विशेषता होती है, जिसमें घरेलू कामगारों को जेंडर, जाति, धर्म व प्रवास के आधार पर भेदभाव और बुरे हालातों में काम करने को मजबूर होना पड़ता है। शहरों में सार्वजनिक सेवाओं व संसाधनों तक की पहुँच से दूर अनिश्चितताओं के साथ हाशिए पर बसने को घरेलू कामगार मजबूर है।(मेहरोत्रा 2010)

स्टोरीबुक के बारे में

महामारी और लॉकडाउन की वजह से घरेलू कामगारों की चुनौतियों को उजागर करने की दिशा में स्टोरीबुक ***'अधिकारों का प्रत्यावर्तन : भारत में घरेलू कामगारों के प्रतिरोध की कहानियाँ'*** शहरी महिला कामगार यूनियन (एस.एम.के.यू – अर्बन विमन वर्कर्स यूनियन) के साथ मिलकर तैयार की गयी है। इस किताब में दलित, आदिवासी, मुस्लिम समुदाय और अन्य समुदाय से घरेलू काम के साथ और इसके बाहर जीने वाले युवा-वृद्ध, लंबे समय से इस काम में लगे हुए और नए प्रवासी के अनुभव शामिल है। ये स्टोरीबुक उन जाति, धर्म और जेंडर आधारित हिंसा और इससे जुड़ी प्रतिक्रियाओं को सामने लाती है, जिसने महामारी के दौरान विकराल रूप ले लिया है।

स्टोरीबुक घरेलू कामगारों की प्रतिक्रियाओं के अनुभवों को दर्शाती है और अपने अधिकारों के चिंताजनक दमन और जारी संघर्ष को बयाँ करती है। इस पिछड़ेपन से जारी संघर्ष का अंदाज़ा एक घरेलू कामगार के वक्तव्य से लगाया जा सकता है जब वो कहती है कि, 'हम दस-बीस साल पीछे चले गए।' [2]

यह एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें काम करने वाले लोगों को उनके अधिकारों के संदर्भ में कोई फ़ायदा नहीं हुआ है। घरेलू कामगारों के लगातार जारी संघर्ष व आवाज़ उठाने के बावजूद देशभर में श्रमिक के रूप में घरेलू कामगारों के अधिकारों को व्यवस्थित रूप से मान्यता नहीं है। (चिगतेरी, ज़ैदी, और घोष 2016) कुछ अपवाद हैं, जहां उनके अधिकारों को मान्यता दी गयी है (जैसे कि कुछ भारतीय राज्यों में न्यूनतम वेतन अधिसूचना में घरेलू कामगारों को शामिल करना, कुछ राज्यों में कल्याण के लिए श्रमिकों के रूप में उन्हें शामिल करना या कार्यस्थल पर यौन-उत्पीड़न के रूप में घरों को शामिल करना) जो काग़ज़ी तो है लेकिन उनके लाभ का असर बेहद

2 विवरण के लिए, लेखकों के पास मौजूद घरेलू कामगारों के अधिकारों पर नीति मानचित्र देखें।

सीमित है।

महामारी और लंबे समय तक लॉकडाउन के संदर्भ में, सालों पीछे जाने की इस भावना के रूप ने कई रूप ले लिए हैं, जिन्हें इस स्टोरीबुक में संकलित कहानियों में उजागर किया गया है। इनमें आजीविका का व्यापक स्तर पर विनाशकारी नुक़सान, उनलोगों के काम में दबाव जो काम पर बने रहे या फिर वापस लौट आए, वेतन की कमी, भेदभाव का बढ़ता स्तर व आर्थिक असुरक्षा से क़र्ज़ का उच्च स्तर, भोजन और आवास की असुरक्षा व शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ना जैसी चुनौतियाँ शामिल है। इन चिंताजनक नुक़सान के मद्देनज़र, घरेलू कामगारों को अपने मालिक व राज्य से अपमान और तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। उन्हें शक्तिहीन बनाकर चुप करवा दिया गया है। उन्हें और घरेलू कामगार संगठन जैसे 'शहरी महिला कामगार यूनियन' को सामूहिक तौर पर वेतन को लेकर मोलभाव करने और सत्ता को चुनौती देने के आधारों को उलट दिया गया है, जिससे वे सालों पीछे चले गए है। महामारी ने घरेलू कामगारों के विरुद्ध की प्रतिक्रियाओं को उनके लिए कभी ख़त्म न होने वाले समय जैसा बना दिया है। (टाउनसेंड-बेल 2020)

घरेलू कामगारों के विरुद्ध व्यवस्थागत भेदभाव, हाशिएबद्ध होने और असंख्य नुक़सान के अनुभव को ये स्टोरीबुक सामने लाती है। (रोव्लेय 2020) घरेलू कामगारों की क़रीब सभी कहानियाँ उनके शुरुआती जीवन की असुरक्षा और बाधाओं को उजागर करती है। ये कहानियाँ कम उम्र में शादी, ख़राब शिक्षा के अवसर और आर्थिक संकट की वजह से जल्द काम करने के संघर्षों को उजागर करती है।

महामारी के दौरान व्यवस्थागत अन्याय और हिंसा का अनुभव बढ़ा, जिसकी जड़ें जाति और धर्म पर आधारित 'पवित्रता' के विचार, प्रदूषण और छुआछूत थी। शादी, तलाक, बीमारी, बच्चे का जन्म, किसी प्रियज़न की मृत्यु या प्रवास जैसी रोज़मर्रा की आम घटनाएँ भी घरेलू कामगारों के लिए एक सदमे के रूप में सामने आयी, जैसे कि अधिक व्यवस्थागत सदमे के तौर पर ज़बरन विस्थापन, जलवायु परिवर्तन और और महामारी को प्रतिघात के तमाशे के रूप में अनुभव किया है। (रोव्लेय 2020)

12 कहानियों की एक झलक

इस स्टोरीबुक की 12[3] कहानियाँ न केवल हर घरेलू कामगार की पारिवारिक पृष्ठभूमि को उजागर करती है बल्कि ये उन तमाम मौजूदा सामाजिक और आर्थिक स्थितियों को भी सामने लाती है, वो वर्तमान में क़ायम है। इन कहानियों में उम्र, जगह, जाति, वर्ग, धर्म और जेंडर से जुड़े विवरण हमें व्यवस्थागत समावेशी ग़ैर-बराबरी को समझने में मदद करते है। ये हमें उन सामाजिक-आर्थिक अनिश्चितताओं के इतिहास का विवरण भी देते है, जिनमें उनका जीवन अंतर्निहित है।

व्यवस्थागत ग़ैर-बराबरी में बसी ज़िंदगी

ये कहानियाँ सामने लाती है उन तमाम असुरक्षा और कठिनाइयों भरे संघर्ष के अनुभव को जिनसे घरेलू कामगारों का जीवन घिरा होता है। ये कहानियाँ कम उम्र में शादी, ख़राब शिक्षा के अवसर और कम उम्र में कामकाजी जीवन की शुरुआत और आर्थिक संकट से घिरी ज़िम्मेदारियों के दबाव की है। ये उन लड़कियों और महिलाओं की कहानियाँ भी हैं जो मुख्य रूप से वंचित समुदायों (दलित, आदिवासी या मुस्लिम) से आती है।

उत्तर प्रदेश और बिहार राज्य के अनुसूचित जाति और पिछड़े समुदाय से ताल्लुक़ रखने वाली महिलाओं को पारिवारिक आर्थिक संकट की वजह से कोई शिक्षा प्राप्त नहीं हो पायी (सुंदरी, शकुंतला, रानी, अनीता और रूपाली की कहानी में देखें)। कम उम्र में शादी हो जाने की वजह से उनके कंधों पर घर-परिवार की पूरी ज़िम्मेदारी डाल दी गयी और उनसे अपेक्षा रखी जाती थी कि वे सभी घरेलू जिम्मेदारियाँ निभाएँ और अपनी ज़िंदगी घर के कामों में बिताए। इसी तरह, संगीता और प्रमिला जैसी महिलाओं का संघर्ष है, जो झारखंड के आदिवासी समुदाय से है। साथ ही, साहिबा, नूर और राबिया बेग़म भी है, जो उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में मुस्लिम परिवारों से है। कहानियों में सबसे कम उम्र की घरेलू कामगार 19 वर्षीय लक्ष्मी दूसरी पीढ़ी की प्रवासी है। फ़रीदाबाद में जन्मी लक्ष्मी मात्र 13 साल उम्र से घरेलू कामगार के रूप में काम करने लगी।

इनमें से कुछ महिलाएँ ऊँची जाति से थी, जिन्हें अन्य की अपेक्षा बेहतर शिक्षा का अवसर मिला, लेकिन उन्हें भी समान दुर्दशा का सामना करना पड़ा। इसका एक उदाहरण ब्राह्मण जाति से आने वाली पुष्पा है, जिसने 12वीं तक पढ़ाई की और इसके बाद उसकी शादी कर दी गयी। स्टोरीबुक में

3 गोपनीयता सुनिश्चित करने के लिए 12 घरेलू कामगारों के नाम रूपांतरित किए गए हैं।

शामिल कई महिलाओं की कहानियों की तरह ही पुष्पा को भी पति की बढ़ती शराब की लत की वजह से घरेलू हिंसा का शिकार होना पड़ा।

रोज़मर्रा की ज़िंदगी में प्रभाव/ ज़िंदगी और काम के सदमे

किताब में शामिल की गयी घरेलू कामगारों की कहानियाँ उनके जीवन में रोज़मर्रा होने वाले बदलावों/सदमे जैसे विवाह, प्रसव, बीमारी और मृत्यु के प्रभावों को भी दर्शाती है। जब कभी भी घरेलू कामगारों की जिंदगियों में कोई बदलाव होता है तो ये उनकी ज़िंदगी में और अधिक असुरक्षाएँ पैदा कर देती है। उदाहरण के लिए, जब सुंदरी के पिता की मृत्यु को गयी तो घर की ज़िम्मेदारी का बोझ उसकी माँ के कंधों पर आ गया। इसलिए 12 वर्षीय सुंदरी की पढ़ाई उन्हें रोकनी पड़ी। महज़ 15 साल की उम्र में उसकी शादी कर दी गयी। रूपाली, सुंदरी और संगीता न केवल महामारी के दौरान बढ़ी ज़िंदगी की अनिश्चितताओं से जूझ रही हैं बल्कि वे अपने या अपने पारिवार के सदस्यों के ख़राब स्वास्थ्य से जुड़ी बढ़ती लागत की वजह से क़र्ज़ से भी जूझ रही हैं।

बच्चों के जन्म और बच्चों की उनकी देखभाल की ज़िम्मेदारियों का भी घरेलू कामगारों के कामकाजी जीवन का प्रभाव पड़ता है, इसमें या तो उन्हें काम पर धकेल दिया गया है और या फिर रोज़गार में रुकावट और अनियमतता का कारण बना है। उदाहरण के लिए, आर्थिक असुरक्षाओं की वजह से नूर और अनीता को अपने बच्चों के जन्म के तुरंत बाद काम करना शुरू करना पड़ा। इसके अलावा, कोठियों में रहकर काम करते हुए बच्चों की देखभाल उनके लिए बड़ी चुनौती थी, जिसका प्रबंधन करना असंभव था। जब संगीता आख़िरी बार काम की तलाश में दिल्ली लौटी तो उसके साथ छोटा बच्चा भी था और इसलिए उसने कोठियों में रहकर काम करने वाले अपने काम को छोड़ दिया।

प्रवास, विस्थापन और शहरी अनिश्चितताएँ

ये कहानियाँ घरेलू कामगारों की ज़िंदगी की घुमंतू, क्षणिक और अनिश्चित प्रकृति को भी सामने लाती है, जब वे शादी के बाद या आजीविका और सुरक्षा की तलाश में गाँव से शहरों की ओर पलायन करते है। उदाहरण के लिए, राबिया की कहानी जिसमें उसे कम उम्र में शहर में प्रवास, शादी के बाद जगह बदलने और फिर रोज़गार व आर्थिक सुरक्षा की तलाश में शहर में प्रवास करना पड़ता है (नूर, रानी और पुष्पा की कहानियाँ देखें)। ये कहानियाँ उस दिल्ली के बारे में भी है जो समाज और राज्य के

हाशिए पर बसती है (मेहरोत्रा 2010; शेख़, बाँदा और मैंडलकर्न 2014)।

ये महिलाएँ जो इस दिल्ली की झलकी अपनी कहानियों के ज़रिए सामने लाती है वे विकसित दिल्ली के अंधेरे पहलू है। गौतमपुरी एक पुनर्वास कॉलोनी है और मथुरा रोड पर बदरपुर और फ़रीदाबाद दिल्ली के किनारे पर बसी अनौपचारिक बस्तियाँ हैं। घरेलू कामगारों के शहरी जीवन के अनुभवों में 'सुंदरीकरण' और 'विश्व स्तरीय शहर बनाने' के नामपर ज़बरन विस्थापन और स्थानांनतरण की कई कहानियाँ शामिल है। जैसा कि सुंदरी, राबिया बेग़म, साहिबा, शकुंतला और रूपाली की कहानियाँ दर्शाती हैं। इस तरह का विस्थापन खादय सुरक्षा, आवास, पानी और स्वच्छता, परिवहन, बच्चों के लिए देखभाल और स्कूली शिक्षा जैसे बुनियादी संसाधनों और सेवाओं तक पहुँच की पहले से मौजूद अनिश्चितताओं को और गहरा कर देता है। इनमें हर कहानी विस्थापन की वजह से विनाश और छिन्न-भिन्न हो चुकी जिंदगियों और हर चीज़ व रिश्तों से उजड़ जाने का चित्रण करती है। ये कहानियाँ और भी अधिक अनिश्चित संदर्भों में फिर से निर्मित होने वाली जिंदगियों के बारे में है। कई महिलाओं के लिए जिन्होंने विस्थापन का कड़वा अनुभव किया है और लगातार उनमें असुरक्षा की स्थिति में रहने की यह भावना और भी तीव्र है।

कामकाजी जीवन : हिंसा और भेदभाव के साथ जीवनयापन

ये कहानियाँ घरेलू कामगारों के मेहनतकश जीवन को दर्शाती हैं, क्योंकि वे ख़राब वेतन और कामक़ाज़ी परिस्थितियों से गुजरते हैं। ये सभी कहानियाँ घरेलू काम की व्यवस्थागत रूप से सही वेतन न देने की प्रवृत्ति को दिखाती है, जो घरेलू कामगारों को मिलने वाली मज़दूरी को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, अपने 16-17 साल के कामकाजी जीवन में अनीता ने प्रतिमाह 400 रुपए कमाना शुरू किया था। अब वो प्रतिमाह 6,000 रुपए कमाती है, जो की दिल्ली (श्रम विभाग) में अर्ध-कुशल श्रमिकों के लिए वर्तमान न्यूनतम वेतन 18,993 रुपए से काफ़ी कम है (श्रम विभाग, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली)। बेहद कम वेतन के अलावा, घरेलू कामगारों को वेतन चोरी का भी अनुभव होता है, जैसा कि संगीता की कहानी बताती है। उनके जैसे कोठियों में रहकर काम करने वाले घरेलू कामगारों के साथ सिर्फ़ वेतन चोरी मालिकों द्वारा ही नहीं बल्कि प्लेसमेंट एजेंसियों द्वारा भी किया जाता है।

ये कहानियाँ विस्थापन के दर्द को भी बयाँ करती

है, जिसका असर उनकी कामकाजी जिंदगियों पर पड़ा है। जैसे कि उनके लिए कार्यस्थलों से दूरी बढ़ने के साथ-साथ काम पर आने-जाने के खर्चे का दबाव बढ़ा (इसे साहिबा और रूपाली की कहानियों में देखें)। कहानियाँ काम करने की ख़राब परिस्थितियों के प्रभावों को भी सामने रखती है। उदाहरण के लिए, रूपाली की कहानी उसके कार्यस्थल पर सिर में चोट लगने के बाद उसके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य दोनों पर पीड़ादायक प्रभावों को दर्शाती है। काम की ख़राब परिस्थितियाँ ख़ासतौर पर कोठियों में रहकर काम करने वाले कामगारों के शोषण को उजागर करती है (इसे लक्ष्मी, संगीता और प्रमिला की कहानियों में देखें) जो अक्सर बिना आराम के लंबे समय तक काम करने, गतिशीलता की कमी और अक्सर उनपर निगरानी के दबाव को सामने लाती है। झारखंड की युवा आदिवासी महिलाओं में संगीता और प्रमिला की कहानियाँ शोषण और अमानवीयकरण के कुछ सबसे भयावह अनुभवों को उजागर करती हैं। लिंग, जाति और धर्म के कारण भेदभाव का सामना करने वाले श्रमिकों की परेशान करने वाली कहानियाँ भी हैं (उदाहरण के लिए रूपाली, रानी और राबियाँ की कहानियाँ देखें)।

इन सबके बीच इन घरेलू कामगारों ने जटिल विपरीत परिस्थितियों पर क़ाबू पाने के लिए दृढ़ता दिखाई है। उदाहरण के लिए, साहिबा की स्थानांतरण कहानी, जिसमें उसकी नौकरी छूटने और बेटे की चोट से निपटने में उसने ताक़त दिखाई। उसने कभी हार नहीं मानी और हमेशा पैसे कमाने और बचत के वैकल्पिक तरीक़ों के साथ जीवन में आगे बढ़ी। इन कहानियों में मालिकों के सहयोगात्मक संरक्षण की भी कहानियाँ है, जिसमें घरेलू कामगारों को महामारी के बुरे दौर के साथ-साथ रोज़मर्रा की ज़िंदगी में भी कठिनाइयों के दौरान राहत दी। उदाहरण के लिए, पुष्पा की कहानी जो घरेलू कामगारों की जीवन रेखा की एक झलक सामने रखती है जिसमें कैसे अपने बच्चों की बीमारी के दौरान छुट्टी की ज़रूरत को स्वीकार करना, अपने जीवन में होने वाली हिंसा या महामारी के दौरान उसकी मदद करना है। हालाँकि, घरेलू कामगारों को अपने मालिकों से 'सहयोगात्मक संरक्षण' की बजाय अपने अधिकार के रूप में अपेक्षा करनी चाहिए।

महामारी का प्रतिघात : व्यवस्थागत ग़ैर-बराबरी का वीभत्स रूप

हर कहानी का एक प्रमुख पहलू घरेलू कामगारों के सामने आयी महामारी और लंबे समय तक लॉकडाउन की वजह से उनके अधिकारों पर प्रतिघात और प्रतिरोध की कहानी है। क़रीब सभी कहानियाँ

आजीविका के व्यापक नुक़सान के विनाशकारी प्रभावों को उजागर करती हैं। जहां काम की हानि की वजह से आर्थिक संकट में भयानक वृद्धि हुई। यह बुरी तरह खादय सुरक्षा, बचत की हानि, क़र्ज़ में वृद्धि और ख़राब शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य में गिरावट के रूप में प्रकट होता है। अनीता की कहानी इस गिरावट के अन्यायपूर्ण निहितार्थों के अनिश्चित अस्तित्व को उजागर करती है, जहां उसने न केवल अपनी दो नौकरियाँ खो दिन, बल्कि अनीता के घर के बाक़ी कमाने वाले सदस्यों (उसके पति और सास) ने भी अपनी नौकरियाँ खो दीं। इसके चलते, चार बच्चों की देखभाल के साथ, अनीता क़र्ज़ में डूब रही है। उसे इस परिस्थिति से निकलने का कोई रास्ता नहीं दिख रहा है और इससे उसके मानसिक स्वास्थ्य पर भी असर पड़ रहा है।

अनीता की तरह सुंदरी को भी दोबारा नौकरी नहीं मिल पाई है। यह उसकी उम्र (वह अभी 56 वर्षीय है) के साथ-साथ खुला/पार्ट-टाइम व कोठियों में चौबीस घंटे रहकर काम करने जैसे घरेलू काम के बदले चलन की वजह से है। इस बदलाव की वजह से रोज़गार पाने में असमर्थता अन्य महिलाओं में भी दोहराई जाती है (इसके लिए नूर और रूपाली की कहानी देखें)। गंभीर आर्थिक ज़रूरतों के संदर्भ में इस बढ़ी हुई काम की असुरक्षा ने घरेलू कामगारों की बातचीत और सौदेबाज़ी की शक्तियों पर भी गंभीर असर डाला है। नूर की स्थिति से पता चलता है कि वह अपने मालिक की शर्तों को स्वीकार करने के लिए तैयार है, चाहे वो शर्त कितनी भी अनुचित हो। क्योंकि नूर को मालूम है कि उसके मालिक को आसानी से दूसरी महिला घरेलू कामगार मिल जाएगी जो उसकी जगह ले सकती है। इसमें कई ऐसे घरेलू कामगारों की कहानियाँ भी शामिल है, जिसमें बिना वेतन बढ़ाए उनके काम के बोझ को बढ़ा दिया है (इसके लिए राबिया की कहानी देखें)। कोठियों में चौबीस घंटे रहकर काम करने वालों के लिए महामारी का मतलब रोज़गार का नुक़सान नहीं बल्कि उनकी काम और रहने की स्थिति बिगड़ना भी था। जैसा कि संगीता की कहानी में उजागर किया है, जहां उसे बीमार होने बावजूद महामारी के दौरान काम करना पड़ा (लक्ष्मी की कहानी में भी देखें)।

ये कहानियाँ महामारी के बाद घरेलू कामगारों द्वारा अनुभव किए गए भेदभाव में वृद्धि को भी रेखांकित करती हैं। जहां उन्हें 'बीमारी फैलने वाले' के रूप में अपमानित होना पड़ा और 'अछूत' होने का एहसास करवाया गया। उनके खाने/पीने के लिए अलग बर्तन किए गए, जिसका उन्होंने पहले कभी अनुभव नहीं किया था (रानी की कहानी में देखें)। इसी तरह, रूपाली को काम करने से पहले

मालिक द्वारा उसकी जाति के बारे में पूछकर अपमानित महसूस होना पड़ता था। ये वो अनुभव थे, जिसका सामना वे महामारी के बाद कर रहे थे। राबिया बेग़म को देश में बढ़ते इस्लामोफोबिया की वजह से अपने कार्यस्थल पर भेदभाव का सामना करना पड़ रहा था, जिसकी स्थिति महामारी के बाद और भी ज़्यादा बदतर हो गयी थी। उनकी कहानी इसबात को उजागर करती है कि कैसे महामारी के दौर में मुसलमानों के साथ तिरस्कृत और अमानवीय व्यवहार किया गया।

एस.एम.के.यू के साथ आयोजित : घरेलू कामगार अधिकारों का (पुन;) दावा

घरेलू कामगारों के प्रतिघात से निपटने के लिए एस.एम.के.यू जैसे घरेलू कामगार संगठनों को चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इसका मुख्य कारण घरेलू कामगारों की अपने काम को लेकर तोलमोल व बातचीत की शक्ति कम होने के साथ-साथ इस क्षेत्र में आए बदलाव है, जहां मालिक को अब चौबीस घंटे कोठी में रहकर काम करने वाले कामगारों की माँग होती है। इन तमाम असुरक्षाओं के बावजूद स्टोरीबुक की कहानियों के ज़रिए एस.एम.के.यू के प्रयासों को उजागर किया गया है जिसमें संगठन द्वारा घरेलू कामगारों को राशन, ऑनलाइन योजनाओं का लाभ पहुँचाने जैसे तत्काल राहतकार्य कामगारों के लिए बेहद मददगार साबित हुए। बहुत सी कहानियाँ एस.एम.के.यू द्वारा जारी महत्वपूर्ण प्रयासों को दर्शाती है। इन प्रयासों ने घरेलू कामगारों के लिए एकजुटता और समर्थन की एक महत्वपूर्ण जीवनरेखा प्रदान की है। यह घरेलू कामगारों के लिए अपनी कहानियाँ और बोझ साझा करने की एक जगह है, जिससे कामगारों को सामूहिक रूप से एकजुट होकर प्रतिघात से निपटने के लिए रणनीति तैयार करने के लिए मंच भी दिया है।

निष्कर्ष

यहाँ प्रस्तुत की गयी झलकियाँ इस बात का प्रमाण देती हैं कि उन्हें किस स्तर की असुरक्षा और अनिश्चितता का सामना करना पड़ता है। घरेलू कामगारों पर प्रहार ऐसे संदर्भ में हुआ है जहां उनके अधिकारों को बमुश्किल से मान्यता दी जाती है। फिर भी घरेलू कामगारों के प्रतिघात का अनुभव इन अधिकारों के प्रत्यावर्तन में से एक रहा है।

जैसा कि स्टोरीबुक में बताया गया है कि घरेलू कामगारों ने अपने काम करने और रहने की जगहों में अनिश्चितता की स्थितियों के व्यापक संदर्भ में प्रतिघात का अनुभव किया है। यह महामारी/

लॉकडाउन के कारण कमज़ोरियों के बढ़ने के साथ-साथ घरेलू कामगारों के अधिकारों पर निरंतर निष्क्रियता की वजह से हुआ है।

हमारा मानना है कि घरेलू महिला कामगारों की ये कहानियाँ उनेक द्वारा अनुभव किए गए प्रतिघात, इसकी प्रकृति और कारक को समझने में मदद करेंगी। हम यह भी उम्मीद करते हैं कि इससे घरेलू कामगार संगठनों को प्रतिक्रिया का मुक़ाबला करने के लिए उचित रणनीतियों की पहचान करने में मदद मिलेगी। घरेलू कामगारों के अधिकारों और गतिशीलता पर आगामी टूलकिट के साथ हम परिकल्पना करते हैं कि यह उन शोधकर्ताओं और कार्यकर्ताओं के लिए एक संसाधन प्रदान करेगा, जो दिल्ली और अन्य जगहों पर घरेलू कामगारों के अधिकारों का पुन: दावा करने में लगे हुए है।

श्रद्धा चिगटेरी एवं सुदर्शना कुंडू
जेंडर एट वर्क कन्सल्टिंग
जुलाई 2023

संदर्भ:

चिगतेरी, श्रद्धा और सुदर्शना कुंडू. फ़ोर्थकमिंग "विरलेंट हिंदुत्व, विजिलंट स्टेट : सिचूएटिंग बैकलैश एंड इंट्स इम्प्लिकेशन फ़ॉर विमेन राइट्स इन इंडिया" आईडीएस बुलेटिंग

चिगतेरी, श्रद्धा, मुबशीरा ज़ैदी और अन्वेशा घोष. 2016 "लोकेटिंग थे प्रॉसेसेज़ ऑफ़ पॉलिसी चेंज इन थे कॉंटेक्स्ट ऑफ़ एंटी-रेप एंड डोमेस्टिक वर्कर मोबिलाइज़ेशन इन इंडिया" रिसर्च रिपोर्ट, जेनेवा : यूएनआरआईएसडी

दीवान, ऋतु 2022 "पेंडेमिक, पैट्रीआर्कि एंड प्रीकैरिटी: लेबर, लाइवलीहुड एंड मोबिलिटी राइट्स" पॉलिसी ट्रांसफ़ॉर्मेशन डीएडब्ल्यूएन डिस्कशन पेपर न-35 (फ़रवरी)

लेबर डिपार्टमेंट, गवर्न्मेंट ऑफ़ एनसीटी ऑफ़ दिल्ली, एन।डी "करंट मिनिमम वेज रेट" गवर्न्मेंट वेबसाइट। अक्ससेसेड जुलाई 24, 2023. https://labour.delhi.gov.in/labour/current-minimum-wage-rate.

मेहरोत्रा, सुरभि टंडन, 2010 "डोमेस्टिक वर्कर्स : कंडिशन, राइट्स एंड रिसपोंसिबिलिटी – ए स्टडी ऑफ़ पर्ट-टाइम डोमेस्टिक वर्कर्स इन दिल्ली" नई दिल्ली : जागोरी

नीथा, एन। 2013. "पेड डोमेस्टिक वर्क : मेकिंग सेंस ऑफ़ द जिग्सॉ पज़्ज़ल" इकॉनमी एंड पोलिटिकल वीकली 48 (43): 35–38.

रवींद्रन, गोविंदन एंड जोआन वानेक 2020 "इन्फ़ोर्मल वर्कर्स इन इंडिया : ए स्टैटिकल प्रोफ़ाइल "डब्ल्यूआईईजीओ स्टैटिकल ब्रीफ़ न 24 (August): 16.

रोव्लेय, मीशेल वी 2020 "एनीथिंग बात रीऐक्शनरी : एक्सप्लोरिंग द मकैनिक्स ऑफ़ बैकलेश"

साइन : जर्नल ऑफ़ विमन इन कल्चर एंड सोसायटी 45(2): 278–87. https:/doi.org/10.1086/704951.

सेनगुप्ता, नीलांजन एंड समिता सेन 2013 बार्गनिंग ओवर वेजेस ईकोनोमिक्स एंड पोलिटिकल वीकली 48(43): 55.

शेख़, सहाना, सुभद्रा बंदा एंड बेन मंडेलकर्न 2014 "प्लानिंग द स्लम : जेजेसी रिसेटलमेंट इन दिल्ली एंड द केस ऑफ़ सावदा घेव्रा "ए रिपोर्ट ऑफ़ द सिटीज़ ऑफ़ दिल्ली प्रोजेक्ट, नई दिल्ली : सेंटर फ़ॉर पॉलिसी रिसर्च https://cprindia.org/wp-content/uploads/2021/12/JJC-Resettlement-in-Delhi-and-the-Case-of-Savda-Ghevra.pdf.

टाउनसेंड-बेल, इरिका 2020 "बैकलैश एज द मोमेंट ऑफ़ रिवेलेशन" साइन : जर्नल ऑफ़ विमेन इन कल्चर एंड सोसायटी 45 (2): 287–94. https://doi.org/10.1086/704952.

एम्स →
A.I.I.M.S
ALL INDIA INSTITUTE OF MEDICAL SCIENCES
शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्

रानी की कहानी

लॉकडाउन के बाद मालिकों के भेदभावपूर्ण व्यवहार से जूझती शहरी घरेलू महिला कामगार

उत्तर प्रदेश के बिजनौर ज़िले की रहने वाली रानी अनुसूचित जाति से है। दो भाई और तीन बहनों में सबसे छोटी है। रानी के पिता बेलदारी का काम करते थे। परिवार में आर्थिक तंगी की वजह से रानी पढ़ाई नहीं कर पायी। क़रीब दस साल की उम्र में रानी अपने मामा के साथ दिल्ली के गौतमनगर आ गयी, यहाँ उसके बड़े भाई और भाभी भी रहते थे, इसलिए उसे कभी परिवार की कमी महसूस नहीं हुई। उसके भाई एम्स में काम करते थे, जिससे उन्हें वहाँ सर्वेंट क्वाटर मिल गया था। वहाँ की डॉक्टर मैडम रानी को बहुत मानती थी और अक्सर कहती थी कि उसकी शादी जिससे भी होगी उसे वो यहाँ नौकरी दिलवा देंगीं। 18 साल की उम्र की उसकी शादी कर दी गयी।

रानी की शादी गरीब परिवार में हुई। उसकी शादी के बाद डॉक्टर मैडम ने कई बार उसके भाई को बोला कि उनकी नौकरी कुछ ही दिन बाक़ी है, इसलिए अगर वो रानी के पति को यहाँ बुला लेता है तो उसे वो ऑल इंडिया मेडिकल एसोसिएशन[4] (एम्स) के किचन में उसकी नौकरी लगवा सकती है। लेकिन मायके वालों ने दामाद होने की शर्म से उसे काम के लिए नहीं बोल पाए और उसकी नौकरी नहीं लगी। एकसाल बाद रानी को अपने पति के साथ रोज़गार की तलाश में दिल्ली आना पड़ा। यहाँ आकर वे गौतमनगर में झुग्गी बनाकर रहने लगे, चूँकि रानी के भाई को वहाँ के लोग जानते थे इसलिए किसी ने कोई आपत्ति नहीं की। परिवार की आर्थिक तंगी की वजह से रानी ने कोठियों में काम करना शुरू किया।

इस विस्थापन में रानी और उसके पति की नौकरी चली गयी। उनके ऊपर क़र्ज़ बढ़ने लगा। वो दोनों बहुत हताश हो गए।

4 एम्स भारत के प्रमुख चिकित्सा व शिक्षण संस्थान में से एक है।

विस्थापन ने बिखेर दी रानी की ज़िंदगी

शुरुआत में रानी को घरेलू काम करने में काफ़ी दिक़्क़त हुई, उसे काम समझ में नहीं आता था जिससे उसे काफ़ी डाँट भी सुननी पड़ती थी। अपने तीन साल के बेटे और बेटी को रानी ने कोठियों में काम करके पढ़ाना शुरू किया। इसी बीच उन्हें गौतमनगर से गौतमपुरी विस्थापित होना पड़ा, जिससे उनकी आर्थिक तंगी और बढ़ती चली गयी। इस विस्थापन में रानी और उसके पति की नौकरी चली गयी। उनके ऊपर क़र्ज़ बढ़ने लगा। वो दोनों बहुत हताश हो गए। उनका रोज़गार छीन गया और बच्चों की पढ़ाई रुक गयी। वे सभी मूलभूत सुविधाओं से दूर हो गए। रानी ने अपने गौतमनगर के काम को जारी रखने की कोशिश की लेकिन आने-जाने के किराए से उनकी आर्थिक तंगी और भी बढ़ गयी। ऐसा लग रहा था जैसे वे पंद्रह-बीस साल पीछे चले गए।

लॉकडाउन के बाद से बढ़े भेदभावपूर्ण व्यवहार से जूझती रानी

कुछ समय के बाद धीरे-धीरे उनकी ज़िंदगी पटरी पर आने लगी और क़र्ज़ का भार भी कम होने लगा था। इसके बाद लॉकडाउन का समय रानी के परिवार के लिए बुरा दौर बनकर आया। एक़बार फिर रानी और उसके पति का काम छूट गया। बच्चों की पढ़ाई पूरी तरह बंद हो गयी और परिवार दो वक्त की रोटी के लिए भी तरसने लगा। उनके मालिकों ने भी उनसे मुँह मोड़ लिया। इसी दौरान उन्हें शहरी घरेलू महिला कामगार से उन्हें राशन की मदद मिली। उनकी सारी जमापूँजी इस दौरान खर्च हो गयी।

रानी का मानना है कि लॉकडाउन के बाद से कोठियों की मालकिनों का भी रवैया बदल गया है। उन्हें लगता है कि सारी बीमारी झुग्गी वालों की वजह से आती है। इसलिए घरेलू कामगारों के लिए उनका प्यार और सम्मान भी अब पहले जैसा नहीं रहा है।

45 वर्षीय रानी अभी दो कोठियों में काम करती है। ब्लड प्रेशर और अन्य शारीरिक दिक़्क़तों की वजह से वो जल्दी थक जाती है। घर की आर्थिक तंगी उसे काम करने के लिए मजबूर करती है। वहीं लॉकडाउन के बाद से कोठियों की मालकिनों का भी रवैया बदल गया है। उन्हें लगता है कि सारी बीमारी झुग्गी वालों की वजह से आती है। इसलिए घरेलू कामगारों के लिए उनका प्यार और सम्मान भी अब पहले जैसा नहीं रहा है। अब खाने-पीने के बर्तन

अलग कर दिए गए है। रानी को ये सब देखकर बहुत बुरा लगता है, लेकिन परिवार की आर्थिक स्थिति के चलते उसे ये सब सहना पड़ता है। उसका मानना है कि भले ही काम में पैसे कम मिले लेकिन बर्ताव अच्छा होना चाहिए।

रानी ये समझ चुकी है कि अब काम मिलना मुश्किल है और वो काफ़ी साल पीछे जा चुकी है। अब वो पहले जैसे पैसे को लेकर कोई तोलमोल नहीं कर सकती है, जो भी काम मिलता है उसे वही करना पड़ेगा। रानी के बच्चे पढ़ाई में अच्छे है, लेकिन वो उन्हें कब तक पढ़ा पाएगी उसे नहीं मालूम। कम समय में उसने ज़िंदगी की बड़ी चुनौतियों को सामना किया है। शांत स्वभाव की रानी का शरीर अब धीरे-धीरे इस संघर्ष में थकता जा रहा है, लेकिन इन सबके बावजूद वो अपने बच्चों के बेहतर भविष्य के लिए काम कर रही है। उसे उम्मीद है कि शायद एकदिन सब ठीक हो जाएगा।

→
एस.एम.के.यू

राबिया की कहानी

धर्म आधारित भेदभाव के कड़वे अनुभवों से गुजरती एक शहरी महिला कामगार

राबिया ने दिल्ली के ग्रीन पार्क में काफ़ी समय तक कोठियों में घरेलू कामगार के रूप में काम किया। वहाँ की दो कोठियों में तो उसने दस साल से अधिक समय तक काम किया था। काम की तलाश में सालों पहले राबिया के माता-पिता बंगाल के मुर्शिदाबाद से दिल्ली आ गये थे। तब राबिया काफ़ी छोटी थी। यहाँ उसके माता-पिता ने कबाड़ी के काम से शुरुआत की और इसके बाद धीरे-धीरे उसकी माँ कोठियों में घरेलू काम करने लगी। मुस्लिम परिवार के अल्वी जाति में जन्मी राबिया की महज़ सत्रह साल की उम्र में उसके गाँव में शादी कर दी गयी। इसके बाद वो दिल्ली से अपने गाँव वापस आ गयी। रोज़गार के अभाव में यहाँ कुछ समय के बाद घर चलाने में दिक़्क़त होने लगी और एक़बार फिर राबिया अपने पति के साथ दिल्ली आ गयी। इस दौरान गौतमनगर में झुग्गी बनाकर रहने वाले लोगों को गौतमपुरी में विस्थापित किया जा चुका था। इसलिए राबिया ने भी अपने मायके वालों के पास गौतमपुरी में बसने का फ़ैसला किया।

दिल्ली आने के बाद राबिया की शादी कुछ समय तक ठीक चली। उसका पति रिक्शा चलाने का काम करता था। फिर पति को दारू पीने की लत गयी, जिसके बाद तीन बच्चों की परवरिश करना उसके लिए चुनौती बन गया। धीरे-धीरे उसने कोठियों में काम करना शुरू किया। वो हरदिन गौतमपुरी से ग्रीन पार्क काम करने जाती थी। राबिया की ज़िंदगी में कुछ सुधार होना शुरू हुआ ही था कि कोविड-19 के दौरान लॉकडाउन का दौर शुरू हुआ, जो उसके लिए एक अलग तरह के संघर्ष को लेकर आया।

लॉकडाउन के दौर में शुरू हुआ धर्म आधारित भेदभाव का सिलसिला

लॉकडाउन से पहले ही उसके पति का देहांत हो गया और उसे दो महीने इद्दत में गाँव रहना पड़ा। इसके बाद वापस दिल्ली आकर उसने अपने पति का रिक्शा बेचकर अपने बेटी की शादी कर दी। इससे उसके ऊपर क़र्ज़ का बोझ आ गया। आर्थिक

तंगी बढ़ने लगी और ऐसे में उसके पास कोई नया काम भी नहीं था। लॉकडाउन में राबिया को उसकी मालकिनों ने शुरुआत में कुछ पैसे दिए और इसके बाद न तो पैसे मिले और ना ही काम। इस दौरान घरेलू कामगार यूनियन से राबिया को राशन की मदद मिली। लॉकडाउन ख़त्म होने के बाद उसने अपनी दो पुरानी कोठियों में काम करना शुरू किया। ये उसके लिए एक बेहद अजीब और बुरा अनुभव था, जिसकी उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी। लॉकडाउन के बाद दुबारा अपनी काम की जगह पर पहुँचने के बाद उसे अपनी मालकिन से उसके मुस्लिम होने की वजह से ताने सुनने पड़ते थे। ये उसके लिए पहली बार था। उसने कभी अपने साथ ऐसा व्यवहार वहाँ नहीं देखा था। मालकिन अक्सर कहती कि 'मुसलमानों को तो पाकिस्तान चले जाना चाहिए।' टीवी पर जब भी मुसलमानों से जुड़ी खबरें आती तो वो राबिया को वो खबरें दिखाती। ये सब देखकर राबिया को बहुत ग़ुस्सा आता। लेकिन बेरोज़गारी और ग़रीबी से बेबस राबिया के पास काम करने के अलावा और कोई रास्ता नहीं था। वो हमेशा ये सोचती कि इतने सालों में कभी भी उसे अपने धर्म या जाति की वजह से कोई ताने नहीं सुनने पड़े लेकिन आज उसे ये ताने मुस्लिम होने की वजह से सुनने को मिल रहे है और टीवी पर दिखायी जाने वाली खबरों से अब उसे डर लगने लगा था। लगातार हिंदू-मुस्लिम को लेकर बढ़ती बहस से ऐसा लगता था जैसे जल्द ही हिंदू-मुस्लिम के दंगे शुरू हो जाएँगें।

मालकिन अक्सर कहती कि 'मुसलमानों को तो पाकिस्तान चले जाना चाहिए।'

शायद राबिया की मालकिन उसकी मजबूरी समझ चुकी थी, इसलिए वो उससे पहले से ज़्यादा काम करवाती थी और उसका कोई अलग से पैसा भी नहीं देती थी। आए दिन मेहमान आने और पार्टियाँ होने पर काम बढ़ जाता था। पार्टियों में बचा खाना भी मालकिन राबिया की बजाय हिंदू घरेलू कामगारों को देती थी और अक्सर उनका हालचाल लेती, खाने-पीने की चीजें देती और ध्यान रखती। इस भेदभाव से परेशान होकर राबिया ने इस कोठी का काम छोड़ दिया।

राबिया को हमेशा ये महसूस होता है कि वो दस साल पीछे जा चुकी है। सालों कोठियों में काम करने के बाद भी वो कोठी वालों की ज़िंदगी का हिस्सा नहीं बन पायी।

शायद राबिया की मालकिन उसकी मजबूरी समझ चुकी थी, इसलिए वो उससे पहले से ज़्यादा काम करवाती थी और उसका कोई अलग से पैसा भी नहीं देती थी। आए दिन मेहमान आने और पार्टियाँ होने पर काम बढ़ जाता था। पार्टियों में बचा खाना भी मालकिन राबिया की बजाय हिंदू घरेलू कामगारों को देती थी और अक्सर उनका हालचाल लेती, खाने-पीने की चीजें देती और ध्यान रखती। इस भेदभाव से परेशान होकर राबिया ने इस कोठी का काम छोड़ दिया।

जून '२३
स्कूल की फीस
स्पाली - स्कैन का परिणाम

रूपाली की कहानी

सम्मान और अधिकार की माँग
करती शहरी महिला कामगार

उत्तर प्रदेश के बदायूँ ज़िले की रहने वाली रूपाली वाल्मीकि समुदाय से है। तीन बेटे और एक बेटी के साथ उसके माता-पिता सालों पहले काम की तलाश में दिल्ली आ गए थे। दिल्ली में परिवार का पेट पालने के लिए पिता नाली-सफ़ाई का काम करते थे और माँ कोठियों में घरेलू काम करती थी। जब रूपाली के मम्मी-पापा गाँव से दिल्ली आए थे तो उन्होंने एंड्यूजगंज में कूड़ेदान के पास एक टूटी-सी बस के अंदर अपना बसेरा बनाया था। उस कूड़ेदान से वे कचरा इकट्ठा करने यानी कि कचरा कामगार के रूप में काम करते थे। इस काम से उन्होंने पाँच साल तक अपने परिवार का गुजर-बसर किया। इसी बीच उन्हें पता चला कि लोग गौतमनगर एम्स हॉस्पिटल के पास झुग्गी बसा रहे है। उसके मम्मी-पापा ने भी वहाँ जाकर बसने का निर्णय लिया, जिसके लिए उन्हें पुलिस-प्रधान को पैसे देने पड़े, जिसके बाद रूपाली का परिवार अस्सी के दशक में यहाँ आकर बस गया। साउथ एक्स की एक कोठी में धीरे-धीर उसकी मम्मी काम करने लगी। पापा को एक ऑफ़िस में काम मिला। उनकी ज़िंदगी चल रही थी। लेकिन इसी बीच रूपाली के पापा का देहांत हो गया। इससे उनके घर की स्थिति बहुत ज़्यादा ख़राब हो गयी।

साल 1999 में 'सुंदरीकरण' के नामपर गौतमनगर की झुग्गियों को तोड़ने का सिलसिला शुरू हुआ। तब रूपाली बारह साल की थी और पाँचवी कक्षा में पढ़ती थी। इस दौरान उन्हें झुग्गियों से विस्थापित कर गौतमपुरी की बस्तियों में बसाया गया। ये पुनर्वास अपने में बहुत भयावह और तकलीफ़देह था। सालों पहले बसाए बसेरे तोड़ दिए गये। लोगों के रोज़गार चले गए और बच्चों की पढ़ाई बंद हो गयी। दिसंबर की सर्दी में रेलवे लाइन के पास त्रिपाल-पन्नी डालकर रूपाली के परिवार

को कई महीनों रहना पड़ा। रूपाली की मम्मी उसे पढ़ाना चाहती थी, लेकिन बड़े भाई ने ये कहकर मना कर दिया कि 'स्कूल के लिए कौन इतनी दूर जाएगा।' इसके बाद उसके परिवार को एक प्लाट को लेकर डीडीए, इंजीनियर और अन्य विभाग के चक्कर काटने पड़े, तब जाकर एक प्लाट का टुकड़ा सात हज़ार रुपए देने के बाद उन्हें मिला। उनकी ज़िंदगी मानो बीस साल पीछे चली गयी थी, क्योंकि सिर्फ़ मकान आने से ज़िंदगी थोड़े ही बदल जाती है। उनकी ज़िंदगी का ताना-बाना बिखर गया था। रिश्ते-नाते सब एक-दूसरे से अलग हो गए थे। भले ही वो झुग्गी-बस्ती थी पर उसकी मम्मी का काम, घर के पास था। स्कूल पास था। पानी-बिजली थी। यहाँ आकर उन्हें इन बुनियादी सुविधाओं के लिए वंचित होना पड़ा और बहुत परेशनियाँ झेलनी पड़ी। रूपाली पंद्रह साल की उम्र से अपनी मम्मी के साथ कोठियों में काम करने के लिए साउथ एक्स ज़ाया करती थी। उसके बाद पंद्रह साल की उम्र में ही उसने अपनी मर्ज़ी से शादी कर ली। ये शादी सिर्फ़ दो साल तक चली। क्योंकि रिश्ते में बहुत तनाव और हिंसा बढ़ गयी थी। वो अपनी मम्मी के घर नौ महीने तक अपने बेटे को लेकर रही। फिर उसने अपनी पसंद से दूसरी शादी कर ली और इस शादी से एक बेटी है। आज रूपाली का बेटा 18 साल और बेटी 9 साल की है।

चुनौतियाँ : शहरों में महिला कामगार होने की

रूपाली आज भी साउथ एक्स में काम करने जाती है। साउथ एक्स में वो पहले चार कोठियों में काम करती थी, जिसमें अब काम कम हो गए है और उसकी महीने की पगार भी मात्र दो-तीन हज़ार ही रह गयी है। इन्हीं पैसों से वो अपने परिवार का गुजर बसर करती है। एकदिन कोठी में काम करते हुए रूपाली को सिर में किसी नुकीली चीज़ से चोट लग गयी और ज़्यादा खून निकलने की वजह से वो बेहोश गयी। इलाज में क़रीब तीस-चालीस हज़ार रुपए खर्च हुए, जिसका भुगतान मालकिन ने किया। लेकिन इसके बाद उन्होंने रूपाली को दुबारा काम पर नहीं रखा। सही तरीक़े से इलाज न होने की वजह से इस चोट के बाद से उसे दिमाग़ से जुड़ी समस्याएँ होने लगी। अक्सर काम के दौरान उसकी स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याएँ सामने लगी, जिसका असर उसके काम पर भी होने लगा। काम कम होने लगे और आमदनी भी घटने लगी।

अभी के समय में रूपाली साउथ एक्स में एक कोठी में काम करती है, जहां उसे सिर्फ़ कुछ ही

समय के लिए रखा गया है जब तक उसकी मालकिन को दूसरा कुक नहीं मिल जाता। कोविड-19 के बाद से घरेलू काम में आए बदलाव के बारे में रूपाली बताती है कि

'कोविड-19 से पहले हम घरों-कोठियों में झाड़ू-पोछा और बर्तन का काम करके वापस अपने घर लौट जाते थे। लेकिन कोविड-19 के बाद से सभी लोग चौबीस घंटे के लिए काम पर रखने लगे है, इसलिए खुला काम (रोज़ काम पर आने और वापस जाने का काम) करवाने के लिए अब कोई तैयार नहीं होता है।'

मालिक को चौबीस घंटे घरों में रहकर काम करने वाला कामगार चाहिए होता है, जो अब रूपाली के लिए अपने स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याओं और परिवार की ज़िम्मेदारियों की वजह से कर पाना मुश्किल है। यही वजह है कि अब घरेलू काम के क्षेत्र में पुरुष कामगारों की संख्या बढ़ने लगी है, क्योंकि वे आसानी से कोठियों में चौबीस घंटे काम करने के लिए उपलब्ध होते है और ये चलन कोविड-19 के बाद से ज़्यादा बढ़ा है, जिसकी वजह से महिला घरेलू कामगारों के रोज़गार के अवसर कम होने लगे है।

'कोविड-19 से पहले कोठियों में घरेलू कामगार होने की वजह से भेदभाव होता था, लेकिन काम करने वालों की जाति नहीं पूछी जाती थी। लेकिन अब अगर काम खोजने जाओ तो पहले जाति पूछी जाती है।'

कहाँ रहती हो? किस जाति की हो? जैसे सवाल अब अक्सर घरेलू कामगारों के सामने खड़े होते है। आगे शर्त होती है कि – 'अगर बाथरूम साफ़ करेगी तो बर्तन नहीं धोएगी। ज़्यादा छुट्टी नहीं मिलेगी। वग़ैरह-वग़ैरह।' इस नाप-तौल के चक्कर में अब उन्हें काम नहीं मिलता है। कोविड-19 के दौरान बढ़ी बेरोज़गारी की वजह से अब घरेलू कामगार महिलाएँ अपनी कोई भी बात नहीं रख सकती है, उन्हें हर शर्त और कीमत को मानकर काम करना पड़ता है। क्योंकि कोविड-19 के बाद काम के मौक़े कम हो गए।

यूनियन से जुड़ाव और एक उम्मीद

कोविड-19 दौरान रूपाली का जुड़ाव शहरी महिला कामगार यूनियन से हुआ। उस समय शहरों में कोविड-19 के चलते साइबर कैफ़े जैसी सारी दुकाने बंद हो गयी थी और दूसरी तरफ़ सरकार की कल्याणकारी योजनाएँ ऑनलाइन हो गयी थी, जो मज़दूरों की पहुँच से बाहर थी। तब शहरी महिला कामगार यूनियन ने ज़न सूचना केंद्र के माध्यम से सरकारी योजनाओं से जोड़ने के लिए मज़दूरों के ऑनलाइन फार्म भरने व नाम चढ़वाने का काम शुरू किया। इसी दौरान रूपाली यूनियन की सदस्य गुड़िया से अपने राशन कार्ड में नाम चढ़वाने के लिए मिली। तभी से रूपाली का संगठन से जुड़ाव बना। उस समय रूपाली को यूनियन से दो से अधिक बार राशन मिला, जिस मदद से रूपाली बहुत खुश हुई। इसके बाद रूपाली संगठन से जुड़कर अपना योगदान राशन की लिस्ट बनवाने और महिलाओं को यूनियन से जोड़ने जैसे काम के ज़रिए देने लगी।

रूपाली के पति की कमाई क़र्ज़ उतारने और इलाज के खर्चे में चली जाती है। वहीं बीमारी की वजह से रूपाली को नए काम नहीं मिल पा रहे है, जिसके चलते उसे और उसके परिवार को बुरी तरह आर्थिक तंगी का शिकार होना पड़ रहा है। अपने मौलिक अधिकारों से वंचित सम्मानजनक ज़िंदगी से दूर रूपाली ने बचपन से जिस भेदभाव और संघर्ष को जिया है वो का भी लगातार क़ायम है। ऐसा लगता है मानो रूपाली एक जाल में फँस चुकी है, जहां चारों ओर समस्याएँ है। लेकिन सबके बीच जब वो यूनियन में आती है तो उसके चेहरे पर एक अलग-सी चमक होती है। यहाँ वो अपना सुख-दुःख दूसरी महिलाओं से बाँटती है और दूसरी महिला कामगारों की मदद करती है, जो उसके चेहरे पर मुस्कान की वजह भी बन जाती है।

सुंदरी की कहानी

गाँव में बाढ़ से लेकर शहर के विस्थापन तक संघर्षों से भरी एक शहरी महिला कामगार की ज़िंदगी

बिहार के मधुबनी ज़िले की रहने वाली सुंदरी केवट जाति के एक निम्नवर्गीय परिवार से है। परिवार में माता-पिता, दो बहन और एक भाई है। शुरुआती दौर में उसके माता-पिता बेलदारी का काम करके परिवार का पेट पालते थे। आर्थिक तंगी की वजह से सुंदरी सिर्फ़ पाँचवी कक्षा तक ही पढ़ाई कर पायी। इसके बाद अचानक हुए पिता के देहांत ने सुंदरी और उसके परिवार के जीवन का समीकरण ही बदल दिया। सुंदरी तब पंद्रह साल की थी जब पिता के देहांत के बाद उसकी शादी करवा दी गयी। पढ़ाई करने व स्कूल जाने की उम्र में ससुराल की ज़िम्मेदारी उसके नाज़ुक कंधों पर डाल दी गयी।

गाँव में बाढ़ से लेकर शहर के विस्थापन तक संघर्षों भरी ज़िंदगी

सुंदरी बीस साल की थी जब गाँव में आयी भयानक बाढ़ से उसके परिवार से रहने के लिए छत और पेट पालने के लिए रोज़गार का साधन भी छिन गया। उनके पास रोज़गार की तलाश में अब शहर जाने के अलावा और कोई उपाय नहीं था, इसलिए सुंदरी और उसके पति अपने एक बेटे और दो बेटी के साथ दिल्ली आ गए। इस दौरान सुंदरी ये समझ चुकी थी कि इस बड़े शहर में अकेले पति की कमाई से परिवार का पेट पालना मुश्किल होगा। इसलिए उसने आसपास की कोठियों में झाड़ू-पोछा और बर्तन का काम करना शुरू किया। कुछ समय बाद सुंदरी को अपने परिवार के साथ गौतमनगर में आकर बसना पड़ा। यहाँ भी सुंदरी कोठियों में काम करती रही लेकिन उसे यहाँ काम मिलता भी रहा और छूटता भी रहा।

इसी बीच साल 1999 से साल 2000 के बीच में सुंदरीकरण के नामपर गौतमनगर की भी झुग्गी तोड़ दी गयी और यहाँ रहने वाले लोगों को गौतमपुरी में विस्थापित कर दिया गया। ये विस्थापन

अपने आप में एक बुरा अनुभव था। सुंदरी का परिवार मानो अस्त-व्यस्त हो गया। बच्चों की पढ़ाई और जान-पहचान वालों व रिश्तेदारों से नाते टूट गए। बच्चों के स्कूल से उनके काग़ज़ात भी नहीं मिल पाए, जिसके चलते उन्हें आगे पढ़ाई से जुड़ने में ढ़ेरों कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सुंदरी का सभी काम भी छूट गया। इस विस्थापन ने एक़बार फिर उसके परिवार को असुरक्षित ज़िंदगी जीने को मजबूर कर दिया। अब उसे एकबार फिर से काम की तलाश करनी पड़ी, जो अपने आप में किसी चुनौती से कम नहीं था। इसके बाद धीरे-धीरे हर दिन के संघर्षों के साथ उसकी ज़िंदगी बीतने लगी। सुंदरी लॉकडाउन से पहले एक कोठी में खाना बनाने का काम करती थी। कोठी में काम करते हुए एकदिन सुंदरी के पैर में चोट लग गयी और उसकी मालकिन ने उसकी मदद भी की। लेकिन इसके बाद दुबारा उसे काम पर नहीं रखा।

जब सुंदरी काम की तलाश में कोठी में जाती तो मालकिन उसे ये बोलकर भगा देती कि 'पहले वैक्सीन लेकर आओ।' ज़्यादा उम्रदराज होने की वजह से भी लोग उसे काम नहीं देते थे।

कोरोना महामारी से बढ़ी चुनौतियों जूझती सुंदरी

क़रीब 56 साल की उम्र में सुंदरी की ज़िंदगी में कोरोना महामारी का दौर एक बड़ी चुनौती के रूप में सामने आया, जब उसके परिवार की स्थिति बहुत ज़्यादा ख़राब हो गयी। सुंदरी के सारे काम छूट गए और घर में आर्थिक तंगी बढ़ने लगी। ऐसे में जब सुंदरी काम की तलाश में कोठी में जाती तो मालकिन उसे ये बोलकर भगा देती कि 'पहले वैक्सीन लेकर आओ।' ज़्यादा उम्रदराज होने की वजह से भी लोग उसे काम नहीं देते थे। इस दौरान उसके पति की तबियत ख़राब होने की वजह से उसका काम भी छूट गया। सुंदरी के बेटे के पास एक अच्छी नौकरी थी, लेकिन उसने नौकरी छोड़कर रिक्शा चलाने का काम शुरू कर दिया था। साथ ही, बेटे को नशे की लत भी लग चुकी थी, जिसके चलते सुंदरी को अपने बेटे से किसी भी तरह की आर्थिक मदद की कोई उम्मीद नहीं थी। बेटे का अपना परिवार था, जिसकी ज़िम्मेदारी उसपर थी। लेकिन इसके बावजूद वो दो दिन रिक्शा चलाने के बाद घर काम बंद कर देता और घर में रहने लगता था, जिससे परिवार में लगातार आर्थिक तंगी बनी रहती थी।

सुंदरी की ज़िंदगी से कठिनाइयाँ कम होने का नाम ही नहीं ले रही है, ढलती उम्र के साथ उसपर चुनौतियों का भार लगातार बढ़ता जा रहा है।

कोरोना से पहले सुंदरी के पति ने अपने बेटे को अपना और सुंदरी का वृद्धा पेंशन का फार्म भरकर जमा करने के लिए दिया। पर लापरवाह बेटा उस फार्म को घर में रखकर दारू पीने में लग गया और फिर इसके बाद लॉकडाउन शुरू हो गया, जिसकी वजह से उन्हें इस दौरान वृद्धा पेंशन भी नहीं मिल पायी। कोविड-19 के इस कठिन समय में सुंदरी का जुड़ाव शहरी घरेलू कामगार यूनियन से हुआ, जिनकी मदद से उसे और उसके परिवार को कच्चा राशन और पके हुए खाने की भी मदद मिली थी।

विस्थापन और आर्थिक तंगी से ज़ारी सुंदरी का संघर्ष

साल 2022 में सुंदरी ने बदरपुर के एक प्राइवेट स्कूल में काम करना शुरू किया पर वो इस काम से खुश नहीं थी। स्कूल की प्रिंसिपल उसके साथ बहुत किच-किच करती थी। उसे हर बात पर रोक-टोक लगाती थी। ऐसे में सुंदरी के मन में बहुत बार ये ख़्याल आया कि वो ये काम छोड़ दे। लेकिन इसी ख़्याल के साथ उसके ज़हन में अपने बीमार पति और घर की आर्थिक तंगी की तस्वीर सामने आ जाती, जिसे याद करके सुंदरी के मन में ख़्याल आया कि अगर वो ये काम भी छोड़ देती है तो पति की दवाइयों का खर्च कैसे लाएगी। इसलिए उसने बेबस होकर अपने इस काम को जारी रखा।

कुछ समय बाद सुंदरी का वो काम भी छूट गया। इससे उसकी आर्थिक स्थिति और भी ज़्यादा बुरी हो गयी। उसका पति बहुत बीमार है और हॉस्पिटल में उसका डायलिसिस चल रहा है। सुंदरी को भी अपने पति के साथ हॉस्पिटल में ही रहना पड़ता है। खाने और हॉस्पिटल के खर्च का जुगाड़ करने में उसके ऊपर क़र्ज़ का भार लगातार बढ़ता जा रहा है। ऐसा लगता है मानो सुंदरी की ज़िंदगी से कठिनाइयाँ कम होने का नाम ही नहीं ले रही है, ढलती उम्र के साथ उसपर चुनौतियों का भार लगातार बढ़ता जा रहा है। गाँव में बाढ़ से लेकर शहर में विस्थापन के साथ ज़ारी संघर्ष में खुद को सँभालना, पति की बीमारी और ग़ैर-ज़िम्मेदार लापरवाह बेटे के साथ सुंदरी की ज़िंदगी उलझ-सी गयी है।

एस.एम.के.यू
राशन

पुष्पा की कहानी

घरेलू हिंसा और आर्थिक तंगी में बच्चों की परवरिश के लिए संघर्षरत शहरी महिला कामगार

31 वर्षीय पुष्पा का परिवार मूलतः बिहार के भागलपुर ज़िले है। सालों पहले पुष्पा के पिता रोज़गार की तलाश में दिल्ली के बदरपुर इलाक़े के मीठापुर से गौतमपुरी आ गए थे। ब्राह्मण परिवार में जन्मी पुष्पा के परिवार की आर्थिक स्थिति सामान्य थी, लेकिन सलह साल की उम्र में उसकी शादी चंडीगढ़ में करवा दी। उसका पति शूटिंग कम्पनी में कैमरा पकड़ने का काम करता था। ससुराल में आर्थिक तंगी के चलते शादी के कुछ समय बाद से पुष्पा को खानपान से जुड़ी दिक़्क़तों का सामना करना पड़ा। बड़ी बेटी के जन्म के बाद से उसपर दबाव और बढ़ने लगा लेकिन इसी बीच उसके पति को दिल्ली की एक कम्पनी में काम मिल गया। दो साल के बाद पुष्पा के माता-पिता ने उसे गौतमपुरी के पास एक कॉलोनी में झुग्गी दिलवाया, जिसके बाद वो अपना ससुराल छोड़कर से यहाँ रहने लगी। दूसरी तरफ़ उसके पति को नशे की लत लग चुकी थी।

घरेलू हिंसा के बीच बच्चों की परवरिश करती पुष्पा

नशे की वजह से उसके पति का व्यवहार बिगड़ता गया और पुष्पा घरेलू हिंसा का शिकार होने लगी। शुरुआत में वो चुप रहती थी, उसे लगा वक्त के साथ उसके पति में सुधार हो जाएगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। अपनी तीसरी बेटी के जन्म के बाद पुष्पा के पति की हालात में कोई सुधार नहीं हुआ, जिससे वो समझ चुकी थी कि अपने बच्चों का पेट पालने के लिए उसे काम करना पड़ेगा। इसके बाद उसने पड़ोसन की मदद से बदरपुर में खाना बनाने का काम शुरू किया, जिसके लिए उसे 1500 रुपए मिलते थे। पुष्पा का काम करने के लिए बाहर जाना उसके पति को खटकने लगा और आस-पड़ोस के भी लोग उसे भड़काने लगे, जिससे घर में क्लेश बढ़ने लगा। पुष्पा के चरित्र पर सवाल और बढ़ती लड़ाई-झगड़े की वजह से उसे बच्चों को अपने मायके छोड़कर काम पर जाना पड़ता। इस बीच पति का काम भी

बदल गया और वो ड्राइवर का काम करने लगा, लेकिन घर में पैसे नहीं देता था।

नशे की वजह से उसके पति का व्यवहार बिगड़ता गया और पुष्पा घरेलू हिंसा का शिकार होने लगी।

पुष्पा के ऊपर अपनी चार बेटी और एक बेटे को पालने की ज़िम्मेदारी आ गयी। उसने दो घरों में खाना बनाने का काम शुरू किया, जिससे उसे कुल 6500 रुपए की आमदनी होती। इस पैसे से घर चला पाना मुश्किल था, इसलिए पुष्पा को अक्सर अपने मायके से पैसे उधार लेने पड़ते है। उसकी बड़ी बेटी अभी नौवीं कक्षा में पढ़ती है और बेटे ने अभी स्कूल जाना शुरू नहीं किया है। पुष्पा अक्सर सोचती है कि उसे अपनी ज़िंदगी में जिन भी परेशानियों का सामना किया है, उसके बच्चों को उन परेशानियों का सामना न करना पड़े। पुष्पा दो-तीन घरों में नाश्ता व खाना बनाने का काम करती है। काम से मिलने वाले पैसे से बच्चों की परवरिश कर पाना आज भी उसके लिए एक चुनौती है। वो अधिक काम करना चाहती है, जिससे उसे ज़्यादा पैसे मिल सके और बच्चों की बेहतर परवरिश हो सके। बारह घंटे वाले या दूर इलाक़ों में काम के लिए अच्छे पैसे मिलते है, पर छोटे बच्चे होने की वजह से वो ये काम नहीं पा रही है।

कोविड-19 के पहले पुष्पा खाना बनाने का काम करती थी लेकिन लॉकडाउन के दौरान उसका काम छूट गया, जिससे उसकी मुसीबतें और भी ज़्यादा बढ़ गयी। बच्चों को स्कूल से राशन मिलता था। शहरी महिला कामगार यूनियन ने भी दो बार राशन से पुष्पा की मदद की और उसकी सारी जमा पूँजी भी खर्च हो गयी। कोविड-19 के बाद से स्थिति थोड़ी बेहतर हुई। अच्छे काम मिले, जहां मालकिन काफ़ी सहयोग करती है। जब उसके बेटे को पीलिया हुआ तो उन्होंने पुष्पा की मदद की और काम से छुट्टी भी दी। वहीं, कोविड-19 के समय पति को दारू नहीं मिलती थी तो वो अच्छे से बात करता था। फिर जैसे से दारू मिलना शुरू हुई उसने फिर से वैसे ही बर्ताव करना शुरू कर दिया।

घरेलू हिंसा से जूझती पुष्पा अपने बच्चों को बेहतर भविष्य देने की जद्दोजहद कर रही है। इस संघर्ष में कई बार वो खुद को अकेला और थका महसूस करती है, लेकिन ऐसे में शहरी महिला कामगार यूनियन का संगठन उसे सुकून देता है।

संघर्षों के बीच हिम्मत और सुकून देता शहरी महिला कामगार संगठन

पुष्पा ने हमेशा परिस्थितियों को बेहतर होने का इंतज़ार किया। वो अक्सर सोचती है कि ज़िंदगी में उसे जिन परेशानियों का सामना करना पड़ा, उसके बच्चों को कभी उन परेशानियों का सामना न करना पड़े। उसे शुरू में लगता था कि बेटियों की वजह से उसके पति का व्यवहार उसके प्रति ऐसा है, इसलिए उसने बेटे की चाह में चार बेटियों को जन्म दिया लेकिन इसके बाद जब बेटे का जन्म हुआ तब भी उसके पति के व्यवहार में कोई बदलाव नहीं आया। घरेलू हिंसा से जूझती पुष्पा अपने बच्चों को बेहतर भविष्य देने की जद्दोजहद कर रही है। इस संघर्ष में कई बार वो खुद को अकेला और थका महसूस करती है, लेकिन ऐसे में शहरी महिला कामगार यूनियन का संगठन उसे सुकून देता है। क्योंकि इस संगठन से जुड़ने के बाद उसे न केवल राशन मिलने और यूनियन कार्ड बनवाने जैसी मदद मिली, बल्कि उसने अपने ऊपर होने वाली हिंसा के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाना और अपने फ़ैसलों को भी रखना भी शुरू किया। पुष्पा के पति को उसका संगठन में जाना पसंद नहीं है। पर पुष्पा को ये संगठन 'अपना' लगता है, जहां वो खुद को मज़बूत महसूस करती है।

एस·एम·के·यू
बचत
समूह
कोविड के

साहिबा की कहानी

विस्थापन और कोविड-19 में बिखरी ज़िंदगी को सँभालती शहरी महिला कामगार

दिल्ली के गौतमपुरी कॉलोनी में रहने वाली साहिबा मूलतः उत्तर प्रदेश के कानपुर ज़िले की है। साठ वर्षीय साहिबा के परिवार की आर्थिक स्थिति सामान्य थी। घर में तीन बहन और एक भाई था। पर स्कूल जाने की इजाज़त सिर्फ़ बेटे को थी, इसके चलते साहिबा सिर्फ़ पहली कक्षा में स्कूल जा पाई। अठारह साल की उम्र में साहिबा की शादी उसी के गाँव में कर दी गयी। ससुराल में आर्थिक तंगी थी। उसका पति गाँव में ऑटो चलाने का काम करता था और जेठ दिल्ली में सब्ज़ी बेचता था। धीरे-धीरे साहिबा के परिवार में आर्थिक तंगी बढ़ने लगी और उसका घर चलाना मुश्किल होने लगा। इसके बाद, ससुर के कहने पर जेठ उसके पति को अपने साथ दिल्ली लेकर जाने के लिए तैयार हो गए, लेकिन दोनों भाइयों के बीच बेहतर संबंध न होने ही वजह से जेठ ने साफ़ कह दिया कि दिल्ली जाने और रहने के लिए पैसे का इंतज़ाम उसे खुद करना होगा। पति के पास पैसे नहीं थे। लेकिन साहिबा ने खर्च से पैसे बचाकर नब्बे रुपए रख थे, जिसे लेकर उसका पति दिल्ली आया।

विस्थापन से उजड़ी ज़िंदगी में उलझती साहिबा

कुछ समय बाद ससुर के साथ साहिबा दिल्ली आ गयी। क़रीब छह महीने में ही जेठ-जेठानी के साथ लड़ाई-झगड़े शुरू हो गए, जिसके बाद वो लोग गौतमनगर में झुग्गी किराए पर लेकर अलग रहने लगे। उसके ससुर भी साहिबा के परिवार में आ गए। कुछ समय के बाद पति का काम ठीक चलने लगा और साहिबा ने अपनी सूझबूझ से पैसे जमा करके कुछ ही सालों में 13000 रुपए में एक झुग्गी ख़रीद ली। दिल्ली आए साहिबा को पाँच-छह साल बीत चुके थे। उसकी एक बेटी और तीन बेटे थे। ये सुख के पल साहिबा की ज़िंदगी में शुरू ही हुए थे कि बेटी के जन्म के कुछ समय बाद वो बीमार हो गयी, जिसके इलाज में उसकी सारी जमापूँजी ख़त्म हो गयी और

इसी बीच गौतमनगर में झुग्गी टूटने का नोटिस आ गया। मानो एकसाथ चारों तरफ़ से उसके परिवार पर समस्याएँ आ गयी। साल 1998 में उन्हें परिवार सहित गौतमनगर से गौतमपुरी विस्थापित होना पड़ा। इस विस्थापन ने एक पल में उनकी दुनिया उजाड़ दी थी। बसी-बसाई झुग्गी से निकलकर उसे अपने चार बच्चों के साथ गौतमपुरी के खुले खेतों में कई दिनों रहना पड़ा। फिर गौतमपुरी में प्लाट लेने के लिए उन्हें 7000 रुपए का क़र्ज़ करना पड़ा, जिससे उनके परिवार को छत मिली। इसके बाद क़र्ज़ का दौर बढ़ता ही चला गया। पहले झुग्गी में छप्पर बनाने के लिए सामान, फिर बेटी की बीमारी के लिए खर्च जैसी दिक़्क़तों से उनपर क़र्ज़ बढ़ने लगा। इस विस्थापन ने उन्हें अपने काम से अलग कर दिया था, रिश्तेदारों से संपर्क टूट चुके थे और इसका असर साहिबा और उसके पति के रिश्ते पर भी पड़ने लगा था। इस बीच पति ने नशा करना शुरू कर दिया और धीरे-धीरे मारपीट भी शुरू हो गयी।

विस्थापन ने एक पल में उनकी दुनिया उजाड़ दी थी। बसी-बसाई झुग्गी से निकलकर उसे अपने चार बच्चों के साथ गौतमपुरी के खुले खेतों में कई दिनों रहना पड़ा।

साहिबा की सूझबूझ से सुधरती ज़िंदगी

परिवार की आर्थिक तंगी और झगड़ों से तंग आकर साहिबा ने भी काम करने का मन बना लिया और एकदिन एक परिचित महिला के साथ काम की तलाश में वो डिफ़ेंस कॉलोनी में गयी। आज तक उसे कभी कमाने की ज़रूरत नहीं पड़ी थी, इसलिए कभी भी रोज़गार की तलाश में वो अपने घर से नहीं निकली थी। उसे कहाँ और क्या काम मिल सकता है ? इसका उसे अंदाज़ा नहीं था। उसने कॉलोनी में कई कोठियों का दरवाज़ा खटखटाया और उसे एक कोठी में झाड़ू-पोछा व बर्तन का काम मिल गया। काम की जगह अच्छी थी, पर काम ज़्यादा-पैसे कम थे। लेकिन वहाँ मालकिन काफ़ी अच्छी थी।

मुस्कुराते हुए साहिबा अपनी मालकिन के बारे में बताते हुए कहती है कि "मालकिन कभी छुट्टी दे देती थी और कभी-कभी वो हक़ से माँग लेती थी।

वो साहिबा की दिक़्क़तों को समझती थी। उन्होंने साहिबा का बैंक में खाता खुलवाया। इसके बाद उसे और भी काम मिलते गए और एक समय पर उसकी मासिक आय 25000 रुपए हो गयी।

साल 2003 में साहिबा शहरी घरेलू कामगार संगठन से जुड़ी है। महिला बचत कोष में उसने बीस साल से अधिक समय तक पैसा जमा किए और ज़रूरत के समय वो यहाँ से पैसे ले लेती।

ज़िंदगी जैसे ही बेहतरी की तरफ़ बढ़ती अचानक से समस्यायें उसे सालों पीछे धकेल देती है।

धीरे-धीरे हालात सुधरने लगे। उनलोगों ने अपना घर बना लिया, लेकिन पति के नशे की आदत नहीं गयी। चार बच्चों के बाद साहिबा ने नसबंदी करवा ली थी, जिसके बाद से उसे कई शारीरिक दिक़्क़त होने लगी। शरीर में सूजन और हर समय थकान की समस्या रहती। इसलिए कई बार उसकी बेटी भी उसे कोठियों में काम करने में मदद कर देती। फिर बेटी की शादी के बाद उसकी बड़ी बहू काम करने जाने लगी। कोविड-19 के दौर में दिक़्क़तें बढ़ी। कोठियों में जाना मना कर दिया गया था। इस हालात को सँभालते हुए उन्होंने अपनी सब्ज़ी की दुकान शुरू कर दी, जिससे उस दौर में भी अच्छी आमदनी होने लगी। इस दौरान उसे शहरी घरेलू महिला कामगार संगठन से भी राशन की मदद मिली।

साहिबा ने अपनी पूरी ज़िंदगी कई उतार-चड़ाव देखे। ज़िंदगी जैसे ही बेहतरी की तरफ़ बढ़ती अचानक से समस्यायें उसे सालों पीछे धकेल देती है। लेकिन इन सबके बावजूद साहिबा ने धैर्य और समझदारी से काम किया। विस्थापन से लेकर कोविड-19 तक बिखरी ज़िंदगी को समेटने में साहिबा की कम आमदनी में भी बचत की आदत और रोज़गार के अवसर बंद होने पर दूसरे रोज़गार की शुरुआत से उसने संघर्षों से जूझते हुए परिवार को आगे बढ़ाया।

कोविड के कारण
बेरोज़गारी बढ़ रही है।
लॉकडाउन के दौरान
मानसिक स्वास्थ्य संकट
अचार

अनीता की कहानी

कोविड काल के बाद आर्थिक तंगी और बेरोज़गारी के बीच ज़िंदगी की दिशा तलाशती शहरी घरेलू महिला कामगार

उत्तर प्रदेश के बदायूँ ज़िले की रहने वाली अनीता वाल्मीकि समुदाय से है। गरीब परिवार की अनीता की परवरिश उसके पाँच भाई और दो बहनों के साथ हुई। आर्थिक तंगी के चलते उसे पढ़ाई करने का मौक़ा नहीं मिला। अनीता के पिता मुंबई में एक कोठी में घरेलू कामगार का काम करते थे, जो उनके परिवार में आय का एकमात्र साधन था। परिवार की आर्थिक स्थिति की वजह से अनीता की शादी सत्रह साल में कर दी गयी। शादी के बाद वो दिल्ली के गौतमपुरी बस्ती में अपने ससुराल में रहने लगी। उसका पति नाली सफ़ाई का काम करता था। ससुर हमेशा बीमार रहते और सास कोठियों में काम करने जाती थी। परिवार को मदद करने के लिए अनीता भी कोठियों में काम करने लगी।

अनीता के ससुराल वाले गौतमपुरी से पहले गौतमनगर में रहते थे और उसकी सास साउथ एक्स में काम करने जाती थी। लेकिन विस्थापन की वजह से वे गौतमपुरी में रहने लगे। कुछ समय बाद अनीता के देवर की शादी हो गयी और वो अपने ससुराल से अलग रहने लगी। इससे अनीता और उसकी सास का काम भी अलग-अलग हो गया। अनीता दो कोठी में झाड़ू-पोछा व बर्तन का काम करती थी। शुरुआत में उसे 400 रुपए से 500 रुपए पगार मिलती थी। सत्रह-अट्ठारह साल में उसकी पगार बढ़कर 6000 हजार रुपए तक हो गयी। कोठीवाले अच्छे थे। लेकिन इस बीच बच्चे का जन्म होने की वजह से वो बीमार हो गयी और उसे काम छोड़ना पड़ा। कुछ समय बाद उसने अपनी सास की मदद से काम ढूँढा।

कोविड-19 के बाद से काम नहीं मिल रहा है। जिससे से काम के बारे में पूछो वो 'ना' ही बोलता है। अब जो भी काम मिलते है वो फ़ुल टाइम वाले होते है। परिवार-बच्चे वाले ऐसा काम कैसे कर पायेंगें?

कोविड -19 के चलते आर्थिक तंगी और बेरोज़गारी की मार झेलती अनीता

इसके बाद कोविड-19 का दौर शुरू हो गया, जिसमें अनीता की एक मालकिन अमेरिका चली गयी और दूसरी मालकिन ने अनीता से काम करवाना बंद कर दिया और किसी भी तरह की कोई मदद नहीं की। इस मुश्किल समय में शहरी महिला कामगार यूनियन से उसे राशन की मदद मिली, जिससे उसके परिवार को काफ़ी ज़्यादा राहत मिली। इस दौरान अनीता का पति भी कोई काम नहीं करता था। कोविड-19 के बाद अनीता को कोई काम नहीं मिला। पति को ड्राइवर की एक नौकरी मिली, लेकिन उसका मालिक अच्छा नहीं था। इससे उसका पति हमेशा परेशान रहता था। परिवार की सारी जमापूँजी कोविड-19 के दौरान ख़त्म हो गयी। कम आमदनी और पति पर मालिक के दबाव से परिवार में भी तनाव बढ़ने लगा। परिवार आर्थिक तंगी में जीने को मजबूर होता चला गया। पति मानसिक तनाव में रहने लगा और अनीता टूटने लगी थी।

'दिशाहीन और धुंधला दिखाई देता है अब भविष्य' – अनीता

कोविड-19 के बाद से खुला काम मिलना कम हो गया। ज़्यादातर काम चौबीस घंटे कोठी में रहकर काम करने वाले मिलते, जो बच्चे और परिवार के साथ कर पाना मुश्किल था। इसके बारे में बताते हुए वो कहती है कि 'कोविड-19 के बाद से काम नहीं मिल रहा है। जिससे भी काम के बारे में पूछो वो 'ना' ही बोलता है। अब जो भी काम मिलते है वो पूरे दिन-रात रहकर फ़ुल टाइम वाले काम होते है। परिवार-बच्चे वाले ऐसा काम कैसे कर पायेंगें?'

कोविड-19 की मार से अनीता और उसका परिवार आज तक उबर नहीं पाए है। 35 वर्षीय अनीता घर चलाने के लिए कुछ भी करने को तैयार है। यहाँ तक वो नाली सफ़ाई का भी काम करती है। उसकी एक बेटी बारहवीं और दूसरी बेटी नौवीं कक्षा में पढ़ती है। उनकी पढ़ाई का खर्च भी अब अनीता के बोझ बनता जा रहा है।

लाखों रुपए कर्जे में डूबी अनीता आज खुद को और अपने परिवार को दिशाहीन महसूस करती है। आर्थिक तंगी के चलते उसे अपने बच्चों का भविष्य धुंधला नज़र आता है।

उसके पति ने 12000 रुपए का काम करना शुरू किया, लेकिन घर के लिए गए लोन को चुकाने में उसकी कमाई का बड़ा हिस्सा चला जाता है।

अनीता ने घर के लोन लेते समय सोचा था कि वो और उसका पति साथ कमाकर ये लोन चुका देंगें। लेकिन उन्हें अंदाज़ा ही नहीं था कि कोविड के बाद उन्हें इस तरह बेरोज़गारी और आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ेगा। कोविड के बाद से सास का भी काम छूट गया, जिसके चलते उनसे भी कोई मदद नहीं मिल पाती है। लाखों रुपए कर्जे में डूबी अनीता आज खुद को और अपने परिवार को दिशाहीन महसूस करती है। आर्थिक तंगी के चलते उसे अपने बच्चों का भविष्य धुंधला नज़र आता है।

बचत

शकुंतला की कहानी

बाल-विवाह, दिल्ली के विस्थापन और बिखरते परिवार में संघर्षरत शहरी घरेलू महिला कामगार

दिल्ली के गौतमपुरी में रहने वाली शकुंतला उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ ज़िले की रहने वाली है। पचास वर्षीय शकुंतला अपने मज़दूर परिवार में पाँच बहन और पाँच भाई में से आख़िरी संतान है। चेचक की बीमारी के चलते उसके बाक़ी के भाई-बहन की मौत हो गयी। माता-पिता की अकेली बची संतान शकुंतला को पढ़ाई करने का मौक़ा नहीं मिला पाया क्योंकि उस समय लड़कियों को पढ़ाना ज़रूरी नहीं समझा जाता था। चूँकि शकुंतला के बाक़ी भाई-बहन की मौत हो चुकी थी, ऐसे में उसके माता-पिता ने बारह साल की शकुंतला की शादी करवाने का मन बना लिया। उनका मानना था कि शादी के बाद वो अपने ससुराल चली जाएगी तो शायद उसकी जान को कोई ख़तरा नहीं होगा और इससे उनकी संतान बच जाएगी।

बारह साल में बालवधू बनी शकुंतला

बारह साल की छोटी उम्र में शकुंतला की शादी कर दी गयी और पाँच साल बाद उसका गौना[5] हुआ, जिसके बाद वो ससुराल चली गयी। छोटी उम्र में शकुंतला के ऊपर परिवार को संभालने और काम का बोझ आ गया। आए दिन ससुराल में झगड़े होते। शकुंतला के साथ बेहद बुरा बर्ताव किया जाता, उसकी जेठानी उसे नापतौल कर खाना और तेल-साबुन देती थी। शकुंतला अपना आत्मविश्वास पूरी तरह खो चुकी थी। बेटे के जन्म के बाद परिस्थिति और बिगड़ती चली गयी। उसका पति दिल्ली काम करने के लिए चला गया। शकुंतला की ही तरह ससुराल में उसके बच्चे के साथ भी व्यवहार किया जाने लगा। दूध और खाना उसे भी नापतौल के दिया जाता। इन सबसे तंग आकर वो अपने दो

5 'गौना' वैवाहिक जीवन की शुरुआत का संकेत देता है। ख़ासकर ये बाल-विवाह के संदर्भ में है, जहां अक्सर पति और पत्नी एक ख़ास उम्र तक एकसाथ नहीं हैं।

साल के बेटे के साथ दिल्ली चली गयी। दिल्ली में वो अपने पति के साथ निज़ामुद्दीन में किराए का मकान लेकर रहने लगी। शकुंतला का पति दिल्ली हाईकोर्ट में काम करता था, जिसके लिए उसे 400 रुपए मिलते थे।

दिल्ली में विस्थापन और पति व बेटे के देहांत टूटने लगी शकुंतला

साल 2003 में शकुंतला को परिवार सहित निज़ामुद्दीन से गौतमपुरी विस्थापित होना पड़ा। इस दौरान हालात बेहद बुरे हो गए। बच्चों का भविष्य बिखर-सा गया। गौतमपुरी में पाँच साल तक उन्हें पन्नी डालकर रहना पड़ा, क्योंकि उनके पास घर बनाने को पैसे नहीं थे। साल 2012 में पति के देहांत के बाद स्थिति और भी ज़्यादा ख़राब हो गयी। परिवार में कोई कमाने वाला नहीं था, वे अपने बड़े बेटे को सिर्फ़ बारहवीं कक्षा तक पढ़ा पाए थे। बाक़ी बच्चे पढ़ रहे थे, जिनकी पढ़ाई भी रुक गयी। साल 2013 में शकुंतला अपने बड़े बेटे की शादी कर दी और साल 2014 में उसका देहांत हो गया। पति के बाद बेटे की मौत ने शकुंतला को पूरी तरह तोड़ दिया। दो साल तक उसने मानो अपनी सुध खो दी थी। आसपास वाले उसे और बच्चों को कुछ खाने दे देते और मदद कर देते थे। लेकिन बच्चों की पढ़ाई पूरी तरह बंद हो गयी। अब पंद्रह वर्षीय दूसरा बेटा परिवार के लिए कमाने जाने लगा, जिसका शकुंतला को बहुत ज़्यादा अफ़सोस होता। वो खुद भी दिहाड़ी मज़दूरी करने लगी। उसकी दो बेटियाँ भी है।

आज बच्चों की ज़िम्मेदारी और ग़रीबी के संघर्ष में उलझी 50 साल की उम्र में वो 62 साल की बुजुर्ग जैसी दिखने लगी है और वो अपने भविष्य को लेकर अनिश्चित है।

संघर्षों के बीच हिम्मत देता संगठन

दिहाड़ी मज़दूरी में नियमित काम नहीं मिलता था, इसलिए उसने कोठियों में घरेलू काम करना शुरू किया। उसका पहला काम साउथ एक्स कोटला में था, जहां उसे महीने के एक हज़ार रुपए मिलते थे। इसके बाद उसने एक और कोठी में काम शुरू किया, इन दोनों जगह में काम ज़्यादा और पैसे कम थे, इसलिए उसने ये काम छोड़ दिया। इसके बाद फ़रीदाबाद में एक कंपनी में साफ़-सफ़ाई का काम करना शुरू किया, जिसके लिए उसे 6000 रुपए मिलते थे।

अपनी उम्र को देखते हुए शकुंतला अब ये समझ चुकी है कि उसे कोठियों में काम नहीं मिल पाएगा। उसके ऊपर अभी तीन बच्चों की ज़िम्मेदारी है, जिसमें उसे दो बेटियों की शादी भी करनी है।

वो ये काम करना चाहती थी, लेकिन बीमारी और बेटे को ये डर था कहीं वो अपनी माँ को भाई की ही तरह न खो दे, इसलिए उसे ये काम छोड़ना पड़ा। इसके बाद उसने एक कोठी में काम शुरू किया, लेकिन लंबी छुट्टी हो जाने की वजह से उसका ये काम भी उसके हाथ से निकल गया। अपनी उम्र को देखते हुए शकुंतला अब ये समझ चुकी है कि उसे कोठियों में काम नहीं मिल पाएगा। उसके ऊपर अभी तीन बच्चों की ज़िम्मेदारी है, जिसमें उसे दो बेटियों की शादी भी करनी है। बेटे की 10000 रुपए की कमाई से अभी घर चल रहा है।

कच्ची उम्र में शादी, ज़िम्मेदारियों और काम के बोझ के साथ शुरू हुई शकुंतला की ज़िंदगी संघर्षभरी रही है, जो आज भी जारी है। जैसे ही उसकी ज़िंदगी थोड़ी बेहतर होने की दिशा में बढ़ती उसके अपने साथ छोड़ देते। आज बच्चों की ज़िम्मेदारी और ग़रीबी के संघर्ष में उलझी 50 साल की उम्र में वो 62 साल की बुजुर्ग जैसी दिखने लगी है। वो अपने भविष्य को लेकर अनिश्चित है। लेकिन शहरी घरेलू महिला कामगार संगठन के साथ जुड़कर उसे हिम्मत मिल रही है। बाक़ी साथियों को देख उसे भी कुछ करने और जीवन में डटे रहने की मज़बूती मिल रही है, जो एक उम्मीद देती है।

लक्ष्मी की कहानी

आर्थिक तंगी और पारिवारिक क्लेश के चलते काम करने को मजबूर नाबालिग शहरी घरेलू महिला कामगार

उन्नीस वर्षीय लक्ष्मी का जन्म हरियाणा के फ़रीदाबाद ज़िले में हुए था। परिवार में एक भाई और चार बहनों में सबसे छोटी लक्ष्मी लोहार जाति के गरीब परिवार से है। काम की तलाश में उसके माता-पिता झारखंड से फ़रीदाबाद आकर पत्थर तोड़ने का काम करने लगे। लक्ष्मी तब काफ़ी छोटी थी, जब उसके पिता घर छोड़कर चले गए थे। इसके बाद उसकी माँ ने बेलदारी करके परिवार को सँभाला। फिर कुछ साल बाद उसके पिता वापस आ गए और उन्हें नशे की लत लग चुकी थी। इससे परिवार का माहौल बिगड़ने लगा। आए दिन घर में लड़ाई-झगड़े होने लगे। लक्ष्मी ने छठवीं कक्षा तक की पढ़ाई शहरी घरेलू कामगार यूनियन की मदद से की। इसके बाद परिवार की आर्थिक तंगी और पारिवारिक क्लेश बढ़ने की वजह से वो आगे की पढ़ाई नहीं कर पायी।

परिवार की स्थिति से लक्ष्मी की बुआ वाक़िफ़ थी। उन्होंने लक्ष्मी को कोठियों में काम पर लगा दिया, जिससे वो परिवार में आर्थिक सहयोग कर सके। लक्ष्मी को भी पढ़ाई छूटने के बाद घर के बाहर काम करके पैसा कमाना अच्छा लगने लगा। मात्र तेरह साल की उम्र में लक्ष्मी ने कोठियों में काम करना शुरू कर दिया। उसकी बुआ काफ़ी समय से पास के ही इलाक़े में एक कोठी में काम करती थी, जहां उन्होंने लक्ष्मी को बच्चे की देखभाल के काम पर लगा दिया। ये चौबीस घंटे वाला काम था, जिसके लिए उसे हर महीने 6000 पगार मिलती थी। क़रीब डेढ़ साल बाद कोठी वहाँ से शिफ़्ट हो गयी और लक्ष्मी का काम छूट गया। लक्ष्मी ने अब घर का काम सीख लिया था, इसलिए उसे दूसरा काम आसानी से मिल गया। एक कोठी में चौबीस घंटे के लिए काम करने लगी, जिसके लिए उसे हर महीने 10000 रुपए मिलते थे। आँखों में कुछ समस्या होने की वजह से उसे कुछ समय बाद ये काम छोड़ना पड़ा।

हर वक्त कैमरे की निगरानी में रहने को मजबूर लक्ष्मी

लक्ष्मी ने इसके बाद दूसरी कोठी में बच्चे संभालने और डस्टिंग का काम करना शुरू किया। ये भी चौबीस घंटे वाला काम था, जिसके लिए महीने के 10000 रुपए मिलते थे। सुबह पाँच बजे से रात के ग्यारह बजे तक लक्ष्मी को काम करना पड़ता था। पूरे घर में कैमरे लगे हुए थे, जिससे मालकिन अपने पूरे घर में नज़र रखती थी। जैसे ही लक्ष्मी थोड़ा आराम के लिए बैठती तो उसकी मालकिन उसे कोई न कोई काम करने को बोल देती। तबियत ठीक न होने पर भी उसकी मालकिन हर वक्त उसे किसी न किसी काम पर लगा देती थी। हर समय कैमरे की नज़र में रहना लक्ष्मी को हमेशा असहज महसूस करवाता था। इस कोठी में काम करते समय हमेशा लक्ष्मी के खाने के लिए अलग प्लेट होती थी, जिसके रखने की जगह भी अलग होती थी। पीने के पानी के लिए उन्हें अलग बोतल दी जाती थी। कोठी में तीन कामगार थे और तीनों को एक ही प्लेट में खाना पड़ता था और उनके लिए बाथरूम भी अलग था। इन सभी पर मालकिन कैमरे से नज़र रखती थी। उनकी हरकत लक्ष्मी को हमेशा थोड़ी अजीब लगती थी।

'हमेशा लोग कम काम बताकर काम पर रखते है फिर बिना पैसे बढ़ाए काम बढ़ाते जाते है।'

तेरह साल की उम्र से लेकर उन्नीस साल की उम्र तक लक्ष्मी ने क़रीब पाँच कोठियों में काम किया। अपने काम के अनुभव को लेकर वो कहती है कि 'हमेशा लोग कम काम बताकर काम पर रखते है फिर बिना पैसे बढ़ाए काम बढ़ाते चले जाते है।' मजबूरी के चलते लक्ष्मी कभी भी काम को लेकर बहुत तोलमोल नहीं कर पाती है। कोठियों में खाने की ऐसी कोई दिक़्क़त नहीं होती, लेकिन उनके बर्तन अलग रखे जाते। चूँकि लक्ष्मी चावल खाने वाले क्षेत्र से थी, इसलिए उसे चावल ज़्यादा पसंद था। लेकिन कभी अपनी मालकिन को चावल खाने की इच्छा के बारे में नहीं बोल पायी।

अपने काम के अनुभव को लेकर वो कहती है कि 'हमेशा लोग कम काम बताकर काम पर रखते है फिर बिना पैसे बढ़ाए काम बढ़ाते चले जाते है।'

बेहतर जीवन के सपने बुनती लक्ष्मी

अभी लक्ष्मी के पास कोई काम नहीं है। उसका मन सिलाई सीखने का है इसलिए वो खुले काम की तलाश में है। वो अपने लिए कुछ सीखना चाहती है। अब वो चौबीस घंटे वाला काम नहीं करना चाहती है, क्योंकि उसमें वो आराम नहीं कर पाती है। घर में भाई अभी एक कंपनी में काम करके परिवार का खर्च उठा रहा है और अब उसके पिता ज़्यादा लड़ाई-झगड़ा नहीं करते है।

शहरी महिला कामगार यूनियन से लक्ष्मी का जुड़ाव बचपन से है। इससे कोविड-19 में भी उसे राशन की मदद मिली। बैठकों में आते-जाते उसे हर तरह की जानकारी और सलाह मिलती है, जो हमेशा कम उम्र में उसके ऊपर आयी बड़ी ज़िम्मेदारियों को निभाने की हिम्मत उसे देती है। संगठन से जुड़कर आज वो कामगारों के अधिकारों के बारे में जानती है। यौनिक हिंसा के बारे में समझती है। आर्थिक तंगी और पारिवारिक हालातों से लक्ष्मी को पढ़ने की उम्र में घरेलू कामगार का काम शुरू करना पड़ा। समय ने उसे वक्त से पहले ज़िम्मेदार और समझदार बना दिया है, जिससे वो अपने हालातों को समझकर इनसे निकलने के लगातार कोशिश में लगी हुई और उसकी ये कोशिश कितनी सफल होगी ये वक्त और हालात ही तय कर पायेंगें।

चना
तेल

नूर की कहानी

कोविड-19 के बाद रोज़गार के बदले चलन के बीच अवसर तलाशती शहरी महिला कामगार

बंगाल के मालदा ज़िले के शेख़ मुस्लिम परिवार की नूर फ़रीदाबाद[6] में घरेलू कामगार का काम करती है। नूर तब क़रीब तीन-चार साल की थी, जब बीमारी की वजह से उसकी माँ की मौत हो गयी। इसके बाद पिता ने दूसरी शादी कर ली। परिवार की आर्थिक तंगी के चलते तीन बहनों में से एक नूर सिर्फ़ एकसाल ही स्कूल जा पायी। पिता रिक्शा चलाकर परिवार का पेट पालते थे। क़रीब नौ साल की उम्र में नूर अपनी बुआ के साथ दिल्ली घूमने आयी थी। यहाँ वो अपनी बुआ की बेटी-दामाद के पास तीन साल तक बदरपुर में रही और फिर वापस गाँव लौट गयी। इसके तीन साल बाद क़रीब पंद्रह साल की उम्र में नूर की शादी कर दी गयी। उसके ससुराल वाले गदाखोर फ़रीदाबाद में रहते थे।

शादी के दो साल बाद सत्रह साल की उम्र में नूर के बेटे और फिर दो साल बाद में बेटी का जन्म हुआ। अभी नूर के दो बेटे और एक बेटी है। उसकी बारह वर्षीय बेटी पैरों से विकलांग है, जिससे उसे चलने में दिक़्क़त है। बेटी के जन्म के दो-तीन साल बाद नूर ने कोठियों में काम करना शुरू कर दिया था। उसके पति की नशे की आदत थी, इसलिए पति की कमाई से परिवार का खर्च निकालना मुश्किल होता था। गदाखोर के ओमेक्स अपार्टमेंट में उसे पहला काम मिला। कोठी की मालकिन अच्छी थी। झाड़ू-पोछा व बर्तन के लिए उसे महीने के 1800 रुपए मिलते थे। इसके बाद उसे और भी काम मिले, जिससे धीरे-धीरे परिवार की स्थिति बेहतरी की ओर बढ़ने लगी।

---

6 फ़रीदाबाद देश की राजधानी दिल्ली में स्थित है और उत्तरी भारत के हरियाणा राज्य में सबसे अधिक आबादी वाला शहर है।

कोविड-19 से शुरू हुई बेरोज़गारी और आर्थिक तंगी

इसी बीच लॉकडाउन शुरू होने के कुछ समय पहले नूर की कोठी की मालकिन वो इलाक़ा छोड़कर चली गयी थी, जिससे लॉकडाउन के समय उसका सारा काम छूट गया। इस दौरान शहरी महिला कामगार यूनियन की मदद से मिले राशन ने काफ़ी राहत दी। बाक़ी ज़रूरतों के लिए उसे इस बीच काफ़ी क़र्ज़ लेने पड़े, जिसे वो आज भी चुका रही है। नूर का परिवार रोज़ कमाने-खाने वाला था, जिसके पास किसी भी तरह की कोई जमापूँजी नहीं थी। इसलिए ये दौर उसके परिवार के लिए बेहद भयावह था, जहां परिवार का गुजर-बसर करना अपने आप में एक बड़ी चुनौती बन चुका था।

'अब मालिक जितने भी पैसे बोलते है उतने में ही काम करना पड़ता है। अगर 'ना' कहा तो उन्हें और भी कई काम करने वाले आसानी से मिल जाते है।'

कोविड-19 के बाद भी उसे काम तलाशने में काफ़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है। अब ज़्यादातर मालकिन चौबीस घंटे वाले घरेलू कामगार को काम पर रखती है, जो परिवार व बच्चों की वजह से नूर के लिए संभव नहीं है। बाक़ी घरेलू कामगार की तरह ही नूर को भी बेरोज़गारी का सामना करना पड़ रहा है और जो भी काम मिलते है उनमें अब किसी भी तरह की नापतौल की कोई जगह नहीं होती है, क्योंकि काम की संख्या ही कम हो चुकी है। अब मालिक जितने भी पैसे बोलते है उतने में ही काम करना पड़ता है। अगर 'ना' कहा तो उन्हें और भी कई काम करने वाले आसानी से मिल जाते है। ऐसे में नूर अपने बच्चों के भविष्य और परिवार की आर्थिक स्थिति का सोचकर मजबूरी में कम पैसे वाले काम भी करने को मजबूर है। उसे अपनी विकलांग बेटी की पूरी देखभाल करनी पड़ती है, ऐसे में वो चौबीस घंटे वाले काम के बारे में सोच भी नहीं सकती है।

काम के बदले चलन के बीच रोज़गार के अवसर तलाशती नूर

अभी नूर एक कोठी में काम करती है, जहां उसे महीने के मात्र 3000 रुपए मिलते है। इतने कम पैसे में परिवार चला पाना उसके मुश्किल है इसलिए उसे अभी और भी काम की ज़रूरत है। आसपास सरकारी स्कूल न होने की वजह से उसके बच्चे स्कूल भी नहीं जा पा रहे है। पति के बेलदारी का काम नियमित नहीं चलता है, इसलिए उसे कॉलेज में काम

पर लगाया है। वो सिर्फ़ परिवार में राशन भरवा देता है, इसके अलावा कोई खर्च नहीं देता है। बाक़ी के सारे पैसे का दारू पी जाता है।

कोठियों की मालकिनों को लेकर नूर का नसीब अच्छा था। उसे कभी मालिकों के बुरे व्यवहार का सामना नहीं करना पड़ा। अपार्टमेंट में घरेलू कामगारों के लिए टायलेट की व्यवस्था अलग से थी और काम पर उसे अक्सर खाने को भी मिल जाता था। लेकिन पति की नशे की आदत से परिवार की आर्थिक तंगी और कोविड-19 के बाद से काम के बदले चलन की मार से नूर आज भी उबर नहीं पा रही हिया। ऐसे में शहरी घरेलू कामगार यूनियन उसे हमेशा हिम्मत देता है। उसे जब भी समय मिलता है वो संगठन की बैठकों में शामिल होती है और वहाँ से मिलने वाली जानकारियाँ उसे बल देती है।

समय सारणी
हर बच्चा एक अनमोल हीरा है!

संगीता की कहानी

कामगार एजेंसी के व्यापार में अमानवीय अनुभवों से गुजरती एक शहरी महिला कामगार

आदिवासी परिवार की संगीता ने बचपन से अपने गाँव सिमडेगा (झारखंड) में ग़रीबी से संघर्ष देखा था, जिसके चलते दूसरी कक्षा में ही उसे पढ़ाई भी छोड़नी पड़ी थी। परिवार में माता-पिता, पाँच बहन और चार भाई थे। संगीता की उम्र तब बारह साल थी, जब एकदिन दिल्ली के एक एजेंट से बड़े शहर, पैसे और काम की चकाचौंध सुनकर संगीता को लालच आ गया और वो अपने दो दोस्तों के साथ बिना घरवालों को बताए दिल्ली चली गयी। आँखों में अपनी ग़रीबी से मुक्ति और बेहतर ज़िंदगी का सपना लेकर वो दिल्ली पहुँची। एजेंट उन्हें दिल्ली में कोटला मुबारकपुर में लेकर आए। इसके बाद उन्हें अलग-अलग जगह में घरेलू कामगार के रूप में काम में लगा दिया गया, जहां उन्हें चौबीस घंटे काम करना था।

कामगार एजेंसी से मिले काम पर संगीता के साथ अमानवीय व्यवहार

संगीता को मयूर विहार में एक कोठी में काम पर लगाया गया, जहां साहब ज्योतिष, मालकिन टीचर और एक कॉलेज जाने वाला युवा बेटा रहता था। सुबह के पाँच बजे से लेकर आठ बजे तक उसे घर में झाड़ू-पोछा और बर्तन जैसे सभी काम पूरे करने होते थे, जिसके बाद उसे घर की बालकनी में निकाल दिया जाता था, जहां उसे शाम के पाँच बजे तक रहना पड़ता था। संगीता को बालकनी में बनी नाली में ही पेशाब करना पड़ता और मल आने पर उसे पॉलीथिन में करना पड़ता था। बालकनी चारों तरफ़ से खुली थी इसलिए उसे पेशाब या मल चादर

ओढ़कर ही करना पड़ता था। गर्मी के दिन में भी वो खुद को चादर से ढककर बालकनी में तेज धूप से बचाती थी।

एकदिन उसने अपनी मालकिन को साफ़ कहा 'मुझे झूठा खाना मत देना। हम पेट पालने गाँव से यहाँ आए है। हम कुत्ते नहीं है जो फेंका, झूठा या बचाकुचा खाना खाएँगे।'

शुरुआत में संगीता सिर्फ़ झाड़ू-पोछा व बर्तन का काम करती थी लेकिन कुछ दिनों बाद जब उसे थोड़ा खाना बनाना आ गया तो उसे घर में खाना बनाने का भी काम दे दिया गया। काम बढ़ा लेकिन उसकी पगार नहीं बढ़ी। नौ हज़ार रुपए में से नौ सौ हर महीने एजेंसी वाला लेकर जाता था और जब भी वो पैसे लेने आता तो मालकिन संगीता को बाथरूम में बंद कर देती, जिससे वो एजेंट से न मिल पाए। दिनभर काम करने के बाद संगीता को मालकिन के बेटे का जूठा खाना दिया जाता, जिसे कई बार वो नाली के पास फेंक देता था। संगीता ने कुछ समय तक इसे बर्दाश्त किया फिर एकदिन उसने अपनी मालकिन को साफ़ कहा कि 'मुझे झूठा खाना मत देना। हम पेट पालने गाँव से यहाँ आए है। हम कुत्ते नहीं है जो फेंका, झूठा या बचाकुचा खाना खाएँगे।'

बुरी नियत के साथ असुरक्षित महसूस करती संगीता

संगीता की घुटन इस माहौल में तब और भी ज़्यादा बढ़ने लगी जब मालिक का बेटा अपने माता-पिता की ग़ैर-मौजूदगी में उसे अपने कमरे में किसी न किसी बहाने से बुलाने लगा। जब भी वो संगीता को अपने कमरे में बुलाता तो अपने कम्प्यूटर पर पोर्न फ़िल्में शुरू कर देता। संगीता खुद को इस माहौल में असुरक्षित महसूस करने लगी थी और उसने मालकिन से घर जाने की इजाज़त माँगी जिसपर मैडम ने उसे थप्पड़ मार दिया। क़रीब डेढ़ साल यहाँ काम करने के बाद संगीता ने दो महीने की पगार लेकर काम छोड़ दिया। बाक़ी की पगार लेने जब संगीता ऑफ़िस गयी तो वहाँ उसे पंद्रह सौ रुपए दस रुपए की गड्डी में दिए गए, जिसे देखकर वो काफ़ी खुश हो गयी। उसे लगा ये बहुत ज़्यादा पैसे है, लेकिन जब उसने बाद में पैसे गिने तो ये मात्र पंद्रह सौ रुपए थे।

ग़रीबी के संघर्ष से मुक्ति और बेहतर ज़िंदगी की तलाश ने उसे कामगार एजेंसी के व्यापार के ऐसे जाल में

फँसाया कि उसे कई बार अमानवीय व्यवहार का सामना करना पड़ा और जब उसने इसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठायी तो आर्थिक तंगी से जूझने को मजबूर हो गयी।

कोरोना में बढ़ी आर्थिक तंगी से उबर नहीं पायी संगीता

संगीता का दिल्ली में ये पहला काम था, जो उसके लिए किसी डरावने सपने से कम नहीं था। इसके बाद कामगार एजेंसी से मिले कामों के साथ उसे ऐसे कई अनुभव मिले, लेकिन रोज़गार से जुड़ने के लिए उसके पास एजेंसी के अलावा और कोई उपाय नहीं था। जैसे-तैसे दिल्ली में वो अपना जीवनयापन कर रही थी और इसी बीच कोरोना महामारी का दौर संगीता के लिए एक चुनौती बनकर सामने आया, जिससे वो आज भी उबर नहीं पायी है। साल 2020 में संगीता गुड़गाँव की एक कोठी में चौबीस घंटे का काम करती थी। उस दौरान घर में सभी को कोरोना हुआ था, जिससे संगीता को भी कोरोना हो गया। संगीता की तबियत थोड़ी संभली ही थी कि गाँव से खबर आयी कि उसके पति की तबियत बहुत ज़्यादा ख़राब हो गयी है, जिसके इलाज के लिए उसे अपने कमाई के सारे पैसे खर्च करने पड़े। शराबी पति की अक्सर बिगड़ती तबियत ने संगीता को आर्थिक तंगी के दलदल में धकेलना शुरू कर दिया था। उसे आए दिन पति की वजह से गाँव वापस जाना पड़ता, जिसका असर उसके काम पर पड़ने लगा।

संगीता चार साल पहले घरेलू कामगार यूनियन से जुड़ी, जब यूनियन ने उसके काम के पैसे दिलवाने में मदद की। इसके बाद संगीता ने अपनी जैसी कई लड़कियों और युवा महिलाओं को बिना कोई पैसे लिए दिल्ली में काम दिलवाने में मदद की। लेकिन संगीता को दिल्ली आकर इतनी चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा, इसकी कल्पना उसने कभी नहीं की थी। ग़रीबी के संघर्ष से मुक्ति और बेहतर ज़िंदगी की तलाश ने उसे कामगार एजेंसी के व्यापार के ऐसे जाल में फँसाया कि उसे कई बार अमानवीय व्यवहार का सामना करना पड़ा और जब उसने इसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठायी तो आर्थिक तंगी से जूझने को मजबूर हो गयी।

प्लेसमेंट
एजेंसी

प्रमिला की कहानी

मानव तस्करी और हिंसा के बीच अपना भविष्य तलाशती शहरी महिला कामगार

झारखंड के खूँटी ज़िले की रहने वाली प्रमिला की परवरिश उसके ननिहाल में हुई। बचपन में उसके पिता रोज़गार की तलाश में अंडमान चले गए और वहाँ जाकर दूसरी शादी कर ली। उसके बाद प्रमिला की माँ अपने चार बच्चों के साथ अपने मायके आ गयी। यहाँ खेती करके उन्होंने बड़े बेटे को मैट्रिक तक पढ़ाया। वहीं छोटे बेटे को एकदिन पचास रुपए न देने पर वो ग़ुस्से में दिल्ली चला गया। प्रमिला केवल छठवीं कक्षा तक ही पढ़ाई कर पायी। इसके बाद उसके बड़े भाई ने उसका स्कूल छुड़वा दिया, जिससे वो घर पर नानी की देखभाल कर सके।

भाई की तलाश में मानव तस्करी की शिकार प्रमिला

प्रमिला अपने छोटे भाई को दिल्ली में तलाशना चाहती थी। जब प्रमिला बारह-तेरह साल की थी, तब वो अपने गाँव में रहने वाले एक एजेंट के साथ साल 2003 में दिल्ली आ गयी। उसे मालूम था कि भाई की तलाश के लिए उसे दिल्ली में रहना होगा, जिसके लिए पैसे की ज़रूरत होगी। प्लेसमेंट एजेंसी का ऑफ़िस पंजाबी बाग में था। यहाँ प्रमिला कुछ महीनों तक रही। उसने यहाँ देखा कि अलग-अलग मैडम और सर यहाँ आते थे, फिर दो लड़कियों को नीचे उनके सामने भेजा जाता, जिसमें वो किसी एक को पसंद करके ले जाते और फिर एजेंसी वाले उनसे पैसों की बात करते। ये देखकर उसे लगा कि उन्हें ख़रीदा-बेचा जा रहा है। इसके बाद प्रमिला ने एजेंसी वालों को बताया कि वो दिल्ली भाई की तलाश में आयी है इस तरह काम करने के लिए नहीं।

प्रमिला बारह-तेरह साल की थी, तब वो अपने गाँव में रहने वाले एक एजेंट के साथ दिल्ली आ गयी और एक कोठी में चौबीस घंटे काम करने वाली घरेलू कामगार बानी।

इसके बाद प्रमिला एक कोठी में चौबीस घंटे काम करने वाली घरेलू कामगार के रूप में गयी। एक साल उसने यहाँ रोते हुए गुज़ारे। उसे हर पल गाँव की याद आती और बेहद अकेलापन महसूस होता था। यहाँ उसे झाड़ू-पोछा, बर्तन और डस्टिंग का काम करना पड़ता था। मैडम अच्छी थी, उन्होंने प्रमिला को खाना बनाना सिखाया। यहाँ काम छोड़ने से पहले प्रमिला ने अपने गाँव के एक एजेंट से घर तीन हज़ार रुपए भेजवाए, जो घर वालों को नहीं मिले। सालभर काम करने के बाद उसे एजेंसी ने सिर्फ़ छह हज़ार रुपए दिए, जिसे प्रमिला नाराज़ हो गयी और उसने एजेंसी में रहने वाली बाक़ी लड़कियों को भी इसके बारे में बता दिया और गाँव वापस चली गयी। दो-तीन महीने के बाद प्रमिला वापस दूसरी एजेंसी वालों के साथ दिल्ली आयी और मुखर्जी नगर में काम करने लगी। इसी समय वो अपने भाई से भी मिल गयी। ये उसका दूसरा काम था और यहाँ भी उसका अनुभव अच्छा था।

मजबूर प्रमिला को आने लगा आत्महत्या का विचार

इस काम के बाद प्रमिला किदवई नगर की प्लेसमेंट एजेंसी के ज़रिए चंडीगढ़ की पंचकूला में काम करने गयी। शुरुआत में यहाँ सब ठीक था। पर फिर मैडम ने मारपीट करना शुरू कर दिया। जब भी मैडम उसे मारती तो अपने कुत्ते से उसे कटवा देती और फिर वो प्रमिला को इंजेक्शन लगवा देती। इससे प्रमिला बुरी तरह कमजोर हो गयी थी। उसकी माहवारी आना भी बंद हो चुकी थी, उसके चेहरे और शरीर में सूजन भी आ गयी थी। मैडम हमेशा उसे मारने के बाद बाथरूम में बंद कर देती थी। पूरा माहौल प्रमिला के लिए एकदम घुटन भरा था। उसने कई बार कोठी से भागने के बारे में सोचा, लेकिन ये मुमकिन नहीं हो पाया। इसके बाद वो आत्महत्या के बारे में सोचने लगी। इसके बाद जैसे-तैसे वो उस काम से निकल पायी। इस काम ने प्रमिला के मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डाला। उसके शरीर में आज भी कुत्ते के काटने के निशान है।

सालभर काम करने के बाद उसे एजेंसी ने सिर्फ़ छह हज़ार रुपए दिए।

साल 2015 के बाद प्रमिला ने कभी एजेंसी के माध्यम से काम नहीं किया। उसने अपनी भाभी के साथ अलग से काम तलाश की और फिर काम करने लगी। यहां पर भी एक-दो महीने तक काम करती रही, लेकिन काम के पैसे नहीं मिले। इसलिए सुशीला को आखिर में 12 घंटे वाला काम करना पड़ा। इस कोठी में उसने चार साल तक काम किया।

यहां उसे एक बुजुर्ग महिला की देखभाल करनी पड़ती थी। यहां सुशीला को काफी अच्छा माहौल मिला। इस बीच कोविड-19 आया तो महिला के पास ही 24 घंटा रहना पड़ता था। बाहर जाने-आने की इजाजत नहीं थी पर सारी सुविधाएं भीं थी। उसकी पगार 11000 रुपए थी। यह परिवार भी अच्छा था। लेकिन चार साल बाद बुजुर्ग महिला का देहांत हो गया और सुशीला को काम छोड़कर जाना पड़ा। उसके बाद भी उसे दूसरा 12 घंटे वाला काम मिल गया। इस कोठी में उसे फेंका हुआ खाना दिया जाता था। मैडम उसे हमेशा डाँटती रहती थी, इससे उसका ब्लड प्रेशर लो हो गया और उसे काम छोड़ना पड़ा।

तीस वर्षीय प्रमिला अब खुला काम कर रही है। उसे ये खुला काम ठीक लग रहा है। भविष्य के बारे में पूछने पर प्रमिला रोने लगती है और कहती है कि

'मुझे घर बनाकर प्रभु के साथ जिंदगी गुजारनी है। परिवार की चिंता बहुत है, इसलिए शादी के बारे में कभी सोचा नहीं और अब इच्छा नहीं है।'

ज़िंदगी के दर्दनाक अनुभवों को याद करके प्रमिला कई बार टूटी चुकी है। बेबसी भरे बुरे अनुभव धीरे-धीरे प्रमिला की मानसिक स्थिति को भी प्रभावित कर चुके है। जटिल परिस्थितियों में जकड़ी प्रमिला शहरी महिला कामगार यूनियन से जुड़कर दूसरी महिलाओं को यूनियन के बारे में बताती है, उन्हें इससे जोड़ती है और उनकी मदद भी करती है।

जेंडर एट वर्क प्राईवेट लिमिटेड भारत में स्थित एक सामाजिक उद्यम है। संस्था का उद्देश्य जेंडर आधारित परिवर्तनकारी बदलाव लाने की दिशा में शोधकर्ताओं, ग़ैर-लाभकारी संगठनों, निजी क्षेत्र और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं सहित नारीवादी आंदोलन के कलाकारों के साथ सहयोग करना है। यह संस्था नारीवादी जाँच और अंतर्संबंध सिद्धांतों के आधार पर विश्लेषण और कार्यवाई दोनों करते हैं। जीडब्ल्यूसीएल का लक्ष्य सिद्धांत और व्यवहार को ऐसे तरीक़ों से जोड़ना है जो सामूहिक समझ को बढ़ावा दें और भेदभावपूर्ण सामाजिक मानदंडों को बदल सके।

शहरी महिला कामगार यूनियन (एस.एम.के.यू) दिल्ली में असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने वाला अपंजीकृत संगठन है। यह संगठन विशेष रूप से महिला घरेलू कामगारों के साथ काम करते हैं, जो जीवन के अधिकार, श्रम की गरिमा और सभ्य काम की माँग करते हैं।